अध्याय–प्रथम

प्रस्तावना, अपराधों की अवधारणा एवं अपराधों का वर्गीकरण

अध्याय-प्रथम

प्रस्तावना, अपराधों की अवधारणा एवं अपराधों का वर्गीकरण

(अ) प्रस्तावना

दक्षिणी राजस्थान क्षेत्र में मानव स्वभावतः एक संघर्षशील प्रणाली होने के कारण अपराध रहित समाज की कल्पना करना व्यर्थ होगा। वास्तव में देखा जाए तो ऐसा कोई समाज नहीं होगा जिसमें ''अपराध'' और अपराधियों की समस्या न रहे हो। अपराध की कल्पना आवश्यक रूप से सामाजिक व्यवस्था से जुड़ी हुई है। समाज के सदस्य के नाते प्रत्येक व्यक्ति के अन्य व्यक्ति के प्रति कुछ कर्तव्य होते हैं और साथ ही दूसरे लोगों के भी उसके प्रति कुछ दायित्व होते हैं। एक-दूसरे के प्रति कर्तव्य और दायित्व है। समाज के व्यक्तियों के परस्पर सम्बन्धों को नियमितता करते हैं और इन्हीं से सामाजिक सुरक्षा सम्भव है। जनजाति क्षेत्र के अधिकांश लोगों, जियो और जीने दो '' के सिद्धान्त में विश्वास रखते हैं तथा एक-दूसरे के अधिकारों तथा हितों का उचित ध्यान रखते हैं परन्तु कुछ थोड़े से व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो इस सामान्य आचरण से हटकर स्वयं को असामाजिक तत्वों के साथ जोड़ लेते हैं तथा अवांछित कृत्यों में लगे रहने में ही अपना हित समझते हैं। अतः राज्य का यह परम दायित्व हो जाता है कि वह इन अवैध एवं असामाजिक तत्वों पर उचित नियन्त्रण रखते हुए समाज में सामान्य शान्ति-व्यवस्था बनाए रखे। विधि का उल्लंघन करने वाले व्यक्तियों को दंडित कर सामाजिक सुरक्षा सुनिश्चित करने का कार्य राज्य अपने कानूनों द्वारा निष्पादित करता है। यही कारण है कि विख्यात विधिशास्त्री सामण्ड़ (Salmond) ने विधि को समाज में मानव के आचरणों को विनिलयमित करने वाला साधन निरूपित किया है। ऐसे मानव आचरण जो किसी समय विशेष तथा समाज विशेष में कानून द्वारा प्रतिबन्धित या निषिद्ध होते हैं , 'अपराध' कहलाते हैं तथा जो आचरण कानून द्वारा प्रतिबन्धित नहीं है , वे विधिमान्य (सूनिंस) आचरण कहे जाते हैं।

अपराध करने वाले व्यक्ति को उसके अपराध कृत्य के लिए स्थान-विशेष की प्रचलित विधि के अनुसार दण्डित किया जाता है।

विश्व के विभिन्न समुदायों के विकास तथा सभी देशों की प्रगति को ध्यान में रखते हुए वर्तमान समय में सामाजिक हितों की सुरक्षा पर अधिक मह Ÿव दिया जा रहा है। इसे सुनिश्चित करने के प्रयास में प्रायः प्रत्येक देश अपनी न्याय व्यवस्था को विशेषतः दण्ड़ प्रणाली को , अधिकाधिक कार्यक्षम तथा प्रभावोत्पादक बनाने के लिए प्रयत्नशील है। यही कारण है कि वर्तमान सदी में दण्ड नीतियों तथा अपराध विज्ञान में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए है। अब अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विश्व के समस्त देशों के लिए एक समान दण्ड व्यवस्था लागू करने के प्रयास किये जा रहे हैं परन्तु देशों की विषमताओं तथा भौगोलिक , आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों में भिन्नताओं के कारण यह संभव नहीं हो सका है। वर्तमान समय की सबसे ज्वलन्त समस्या यह है कि अपराधों को किस प्रकार प्रभावी ढंग से नियन्त्रण में रखा जाए। इस हेतु अपराधों से सम्बन्धित विभिन्न संस्थाओं , जैसे पुलिस , न्यायालय, कारागृह, बोर्स्टल्स, सुधारगृह, परिवीक्षा (Probation), पैरोल आदि के विषय में पर्याप्त जानकारी प्राप्त करके उन्हें अधिक प्रभावी तथा कार्यकुशल बनाने के लिए प्रायः सभी देश प्रयत्नरत हैं। वास्तव में अपराध और अपराधियों से सम्बन्धित विविध पहलुओं का अध्ययन ही अपराधशास्त्र की विषय वस्तु है। सामाजिक सुरक्षा एवं लोक कल्याण से सम्बन्धित होने के कारण इस विषय का व्यावहारिक मह Ÿव है जिसने एक विज्ञान का स्वरूप प्राप्त कर लिया है।[1]

अपराधशास्त्र की परिभाषा के विषय में विद्वानों के विचार भिन्न-भिन्न रहे हैं। उल्लेखनीय है कि न्यायशास्त्रियों ने 'अपराधशास्त्र' की जो परिभाषा दी है वह समाजशास्त्रियों, अर्थशास्त्रियों, जीव-वैज्ञानिकों तथा मनश्चिकित्सकों द्वारा दी गई परिभाषा से मूलतः भिन्न है। परन्तु इस विषय की समाज से सम्बद्धता को देखते हुए किसी भी परिभाषा में इसके सामाजिक पहलुओं की अनदेखी नहीं की

[1] डॉ. ना.वि. परांजपे 2009 अपराध शास्त्र एवं दण्ड प्रशासन, सेन्ट्रल लॉ. पब्लिकेशन, इलाहाबाद, पृ. 14-17.

जा सकती है। चूँकि अपराध मानव द्वारा ही किये जाते हैं , जो समाज का अविच्छिन्न अंग हैं , इसलिए अपराध को समाज से अलग नहीं रखा जा सकता है।[2]

वैधानिक दृष्टिकोण से अपराधशास्त्र एक ऐसा अध्ययन है जो मानव-दुराचरण से सम्बन्धित है जिन्हें विधि द्वारा निर्बन्धित किया जाता है। अपराधशास्त्र के अन्तर्गत मानव की आपराधिक दुष्प्रवृत्तियों के कारण उनके निवारण तथा अपराधों के विश्लेषण आदि का अध्ययन समविष्ट है। ज्ञातव्य है कि समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से अपराधशास्त्रत्र एक व्यापक विषय है , जिसमें ऐसे प्रत्येक कृत्य का समावेश होता है जो सामाजिक हित के प्रतिकूल हो। परन्तु विधिक दृष्टि से मानव द्वारा किये गए केवल वे ही कृत्य या अकृत 'अपराध' माने जाते हैं , जो विधि द्वारा निषिद्ध हों [3] तथा जिनके लिए दण्ड का प्रावधान हो।[4] इसका आशय यह है कि कोई भी मानव आचरण तब तक अपराध नहीं माना जाएगा जब तक कि वह प्रचलित विधि के विपरीत न हो तथा उसके लिए दण्ड प्रावधानित न हो।

सामान्यतः अपराधशास्त्र के अन्तर्गत आपराधिकता से सम्बन्धित सभी पहलुओं का अध्ययन किया जाता है। परन्तु सुविधा की दृष्टि से इसका अध्ययन दो शाखाओं में किया जा सकात है जिन्हें क्रमशः (1) सैद्धान्तिक या शुद्ध अपराधशास्त्र तथा (2) व्यावहारिक या प्रायोगिक अपराधशास्त्र कहा जा सकता है।

प्रो. डब्ल्यू. ए. बोन्गर के अनुसार सैद्धान्तिक अपराधशास्त्र को निम्नलिखित उप-शाखाओं में विभक्त किया जा सकता है -

1 आपराधिक मानवशास्त्र

---

2 डॉ. ना.वि. परांजपे 2009 अपराध शास्त्र एवं दण्ड प्रशासन, सेन्ट्रल लॉ. पब्लिकेशन, इलाहाबाद, पृ. 14-17.

3 लैटिन सूत्र 'nullum cirmen sine lege' अर्थात् ऐसा कोई कृत्य जो विधि द्वारा निषिद्ध न हो 'अपराध' नहीं होता।

4 लेटिन सूत्र 'nullum cirmen sine lege' अर्थात् ऐसा कोई कृत्य अपराध नहीं होता जब तक कि उसके लिए कानून के अन्तर्गत दण्ड का प्रावधान न हो।

2 आपराधिक समाजशास्त्र

3 आपराधिक मनोविज्ञान

4 आपराधिक साइको-न्यूट्रो पेथालॉजी

5 दण्डशास्त्र

प्रायोगिक अपराधशास्त्र के अधीन अपराधी के मानसिक स्वास्थ्य तथा दण्डनीति का अध्ययन किया जाता है जो कि निगमनात्मक पद्धति पर आधारित रहता है।

अपराधशास्त्र तथा दण्डशास्त्र के अतिरिक्त हाल ही में एक नई उप-शाखा का प्रादुर्भाव भी हुआ है जिसे 'क्रिमिनेलिस्टिक्स' कहा गया है , जो मुख्यतः अपराधों का पता लगाने हेतु पुलिस द्वारा अपनाई जाने वाली तकनीक से सम्बन्धित है। इसी प्रकार विक्टिमॉलोजी को भी अपराधशास्त्र की एक स्वतन्त्रत शाखा के रूप में मान्यता प्राप्त हुई जिसके अन्तर्गत अपराध के कारण पीड़ित या व्यथित व्यक्तियों से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं का सूक्ष्म अध्ययन किया जाता है।

डॉ. कैनी के मतानुसार अपराधशास्त्र विज्ञान की वह शाखा है जो अपराध के कारणों, उनके विश्लेषण तथा अपराध निवारण से सम्बन्धित है।

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से अपराधशास्त्र में ऐसे सभी असामाजिक दुष्कृत्यों का विस्तृत अध्ययन किया जाता है जिन्हें समाज अनुचित मानता है। परन्तु 'असामाजिक' शब्द की निश्चित परिधि निर्धारित करना कठिन कार्य होने के कारण इस परिभाषा में निश्चितता का अभाव है, अतः यह अपूर्ण है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अपराधशास्त्र की एक निश्चित सर्वसम्मत परिभाषा प्रायः असम्भव ही है क्योंकि जहाँ एक ओर न्यायवादी इसके विधिक पहलू पर अधिक महत्व देते हैं , तो दूसरी ओर समाजशास्त्री इसके सामाजिक पहलू को अधिक गुरुतर मानते हैं। तथापि इसमें सन्देह नहीं कि

अपराधशास्त्र की प्रमुख विषय-वस्त अपराध और अपराधी ही हैं तथा इसके अन्तर्गत ऐसी सभी संस्थाओं का समावेश है जो इन दोनों पर नियन्त्रण रखने हेतु कार्यरत हैं। जैसा कि पूर्व में कथन किया जा चुका है इनमें पुलिस , न्यायालय, कारागृह, सुधारगृह, परिवीक्षा, पैरोल आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

एक समय था जब यह धारणा थी कि मानव स्वभाव में आपराधिक प्रवृत्ति होना स्वाभाविक है। कुछ व्यक्ति जन्म से ही अपराधी प्रवृत्ति के होते हैं अतः उनमें सुधार होना सम्भव नहीं है। उनके दुष्कृत्यों से समाज को बचाए रखने के लिए यही एकमात्र उपाय है कि उन्हें समाज से पूर्णतः अलग रखा जाए। परन्तु कालान्तर में अठारहवीं शती के मध्य में आधुनिक अपराधशास्त्र के जनक सिसेर बकारिया ने आपराधिकता का क्लासिकिल सिद्धान्त प्रतिपादित किया तथा यह तर्क प्रस्तुत किया कि मनुष्य अपनी स्वयं की स्वतंत्र-इच्छा से ही अपराध करने की ओर प्रवृत्त होता है तथा उसकी स्वयं की बुद्धि ही उसे अपराध करने की प्रेरणा देती है। लेकिन कालान्तर में लाम्ब्रोसो तथा टार्डे जैसे अपराधशास्त्रियों ने बकारिया द्वारा प्रतिपादित स्वतंत्र इच्छा के सिद्धान्त का खंडन करते हुए यह सिद्ध किया कि मानव एक चेतना प्रधान जीव होने के कारण वह स्वंय को अपने वातावरण के अनुकूल ढालने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहता है। इसी अनुकूलन की प्रक्रिया में वह यदाकदा ऐसे कार्य कर बैठता है जो समाज के लिए हानिकारक होते हैं और जिन्हें प्रायः अपराध माना जाता है। अतः वह अपनी स्वेच्छा से अपराध नहीं करता बल्कि परिस्थिति उसे ऐसा करने के लिए प्रेरित करती है। इस परिस्थिति का स्वरूप सामाजिक, आर्थिक, मानसिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक इनमें से कुछ भी हो सकता हैं। प्रथमतः व्यक्ति वैधानिक दायरे में रहते हुए स्वयं को परिस्थिति के अनुकूल ढालना चाहता है , परन्तु यदि वह फिर भी अपना अस्तित्व बनाये रखने में असमर्थ रहता है, तो विवश होकर अवैध मार्ग अपनाता है जिसे हम अपराध कहते हैं। उदाहणार्थ , प्रत्येक व्यक्ति अपने भरण-पोषण के लिए मेहनत करके ईमानदारी से धन कमाना चाहता है तथा इसके लिए प्रयत्नशील रहता है लेकिन यदि वह हर सम्भव प्रयत्न करने के बाद भी वैध साधनों से पैसा

नहीं कमा पाता है तो विवश होकर चोरी , डकैती, लूट, मारपीट आदि घृणित तरीके अपनाता है जिन्हें हम अपराध कहते हैं। अतः उस व्यक्ति की अपराध करने की प्रवृत्ति अनुकूलन के सिद्धान्त के अनुसार ही होती है जिसे समाजशास्त्री अपराध का मुख्य कारण मानते हैं। लेकिन विधिक दृष्टि से इस पहलू पर विशेष बल नहीं दिया गया है।

अनेक विद्वानों का मत है कि ऐसा सोचना गलत है कि अपराधशास्त्र का विस्तार केवल अपराधों के कारणों तथा उन पर नियन्त्रण रखने के उपायों तक ही सीमित है। इस अध्ययन में कुछ ऐसे मानव-आचरणों का समावेश भी है जिनकी प्रकृति आपराधिक स्वरूप की नहीं है। उदाहरणार्थ , बाल अपचारिता के अन्वेषण से पता चलता है कि बालकों की सृजन शक्ति को उचित दिशा न मिलने के कारण वे अपचारिकता की ओर आकृष्ट होते हैं जो आगे चलकर उन्हें आपराधिकता की ओर आकृष्ट कर सकती है। [5] अतः आधुनिक अपराधशास्त्री अपराध और आपराधिकता के प्रति यथार्थवादी दृष्टिकोण अपना रहे हैं। अब तक प्रायः यह सिद्ध हो चुका है कि अपराध का कोई एकल कारण नहीं होता बल्कि अनेक कारणों का संयोग मिलकर एक स्थिति का निर्माण कर देता है जो आपराधिकता के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करने के लिए कारणीभूत होती है और व्यक्ति अपराध कर बैठता है।

अपराधशास्त्र अपराध-विज्ञान की वह शाखा है जो अपराध तथा आपराधिक आचरणों से सम्बन्धित है। इसके अन्तर्गत अपराध के कारणों तथा उनके निवारण का विवेचन रहता है। दण्डशास्त्र के अन्तर्गत अपराधियों की अभिरक्षा , उनके उपचार तथा उन पर नियन्त्रण की विभिन्न पद्धतियों का अध्ययन किया जाता है। अपराधशास्त्र तथा दण्डशास्त्र इन दोनों शाखाओं द्वारा निर्धारित दण्ड नीतियों को दण्ड विधि के माध्यम से लागू किया जाता हैं। दूसरे शब्दों में , दण्डनीति को दण्ड विधि द्वारा कार्यान्वित किया जाता है।

---

[5] इसीलिए कहा गया है कि 'Juveniledelinquency is a gateway to criminality'

उत्पीड़न शास्त्र या विक्टिमोलॉजी के अन्तर्गत यह अध्ययन किया जाता है कि कतिपय व्यक्ति अपराध के शिकार क्यों होते हैं और उनकी जीवन-शैली उन्हें अपराध का शिकार बनाने में किस सीमा तक कारक होती है। यद्यपि विक्टिमोलॉजी को अपराधशास्त्र की एक शाखा के रूप में मान्यता दी जाना बीसवीं शताब्दी के मध्य से प्रारभ हुआ है , फिर भी विगत पच्चीस वर्षों से इसे अध्ययन का एक महत्वपूर्ण विषय माना जा रहा है।

सुविधा की दृष्टि से अपराध विज्ञान को निम्नलिखित शाखाओं में वर्गीकृत किया जा सकता है -

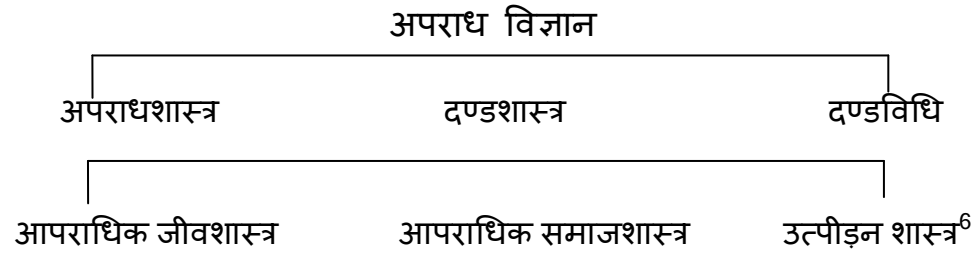

आपराधिक जीवशास्त्र के अन्तर्गत अपराध के विभिन्न कारणों का विश्लेषण किया जाता है। जबकि आपराधिक समाजशास्त्र के अन्तर्गत यह देखा जाता है कि अपराधी की सामाजिक , पारिवारिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं अन्य परिस्थितियाँ उसके अपराध-कृत्य से किस सीमा तक कारणीभूत हैं।[7]

यह सर्वविदित है कि किसी भी देश की दण्डविधि उस देश की सामाजिक विकृतियों का प्रतीक होती है क्योंकि दण्ड के प्रावधान समाज की धारणाओं तथा प्रचलित विचारधाराओं को ध्यान में रखकर ही बनाए जाते हैं। यही कारण है कि सामाजिक परिवर्तनों के साथ-साथ दण्ड विधि में संशोधन करना भी आवश्यक हो जाता है। प्रो. वेचेस्लर के अनुसार , अपराध समाज द्वारा निषिद्ध माना गया एक

---

[6] विक्टिमॉलोजी के लिए हिन्दी पर्यायवाची शब्द 'उत्पीड़न शास्त्र' के प्रयोग के बारे में लेखकों में मतभेद है , लेकिन कोई अन्य उपयुक्त शब्द प्रसार में नहीं होने के कारण इसे उत्पीड़न शास्त्र कहा गया है।

[7] डॉ. ना.वि. परांजपे (2009), अपराध शास्त्र एवं दण्ड प्रशासन , सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन्स , इलाहाबाद, पृ. 14-17

ऐसा आचरण है जिसे रोकने के लिए उसे करने वाले को दंडित किये जाने की व्यवस्था है। इसीलिए वर्तमान अपराधशास्त्रियों के सन्मुख तीन प्रमुख समस्याएँ हैं जिनके समाधान के लिए वे सतत् प्रयत्नशील हैं-

(1) मानव के कौन-कौन से आचरणों को अपराध मानकर प्रतिबंधित किया जाए तथा इन आचरणों पर परिस्थितियों का क्या प्रभाव पडेगा।

(2) इन आचरणों के लिए भर्त्सना के रूप में क्या उपाय उचित होंगे।

(3) इन अपराधों के निवारण के लिए कौन-सी शास्तियाँ उचित होंगी।

इसमें सन्देह नहीं कि अपराधशास्त्र , दण्डशास्त्र तथा दण्ड विधि में इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि इन्हें एक-दूसरे से पृथक् नहीं रखा जा सकता है। दण्ड के निर्धारण का आधार मुख्यतः अपराधों की प्रकृति तथा कारणों पर निर्भर करता है जिसका प्रवर्तन दण्ड विधि अपराधों पर नियन्त्रण रखने में कहाँ तक सफल रही है। इस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए डोनाल्ड टेफ्ट ने कहा है कि अपराधशास्त्र के अन्तर्गत अपराधों एवं अपराधियों का वैज्ञानिक पद्धति से विश्लेषण तथा अध्ययन किया जाता है , जबकि दण्डशास्त्र मुख्यतः अपराधियों के दण्ड एवं उपचार से सम्बन्धित है। उनके मतानुसार अपराधशास्त्र का प्रादुर्भाव तथा विकास दण्डशास्त्र की तुलना में बहुत बाद में हुआ है क्योंकि आरम्भिक काल में अपराधों के कारणों के विश्लेषण के बजाय अपराधियों को दंडित करने पर ही विशेष जोर दिया जाता था।

अपराध विज्ञान में आपराधिक विधि को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। अतः आपराधिक विधि के स्वरूप का विश्लेषण करना उचित होगा। डॉ. ऐलन ने विधि को केवल राज्य का समादेश न मानते हुए इसे लोकमत पर आधारित ऐसी जन-इच्छा माना है जो लोगों को नैतिक मूल्यों का अनुसरण करने के लिए प्रेरित करती है ताकि लोकहित का संवर्धन हो सके। प्रो. मेरेट के विचार से विधि सामाजिक सम्बन्धों का प्राधिकृत नियमन है। [8] अतः स्पष्ट है कि विधि एक

[8] Law is the authoritatide regulation of social relation-marret

सापेक्ष संकल्पना है जो समयानुसार समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप परिवर्तनशील है। दूसरे शब्दों में विधियाँ एक स्थान से दूसरे स्थान तथा एक देश से दूसरे देश में भिन्न-भिन्न रहती हैं। यही कारण है कि विवाह , तलाक, दत्तकग्रहण, औरसता, वसीयत आदि सम्बन्धी हिन्दू विधियाँ मुस्लिम विधि से पूर्णतः भिन्न हैं।

कोई भी दण्ड विधि प्रभावी होने के लिए उसमें निम्नलिखित तत्वों का होना आवश्यक है -

(1) वह राज्य द्वारा निर्धारित एवं मान्य हो,

(2) वह स्पष्ट तथा निश्चित हो,

(3) उसमें एकरूपता हो, तथा

(4) उसके पीछे दण्ड की शास्ति हो।

अतः यह स्पष्ट है कि केवल ऐसे कृत्य ही अपराध माने जाते हैं जो राज्य द्वारा व्यक्त रूप से निषिद्ध घोषित हों। विधि की एकरूपता से आशय यह है कि वह समाज के सभी लोगों के प्रति एक समान लागू की गई हो ताकि न्याय-निर्णय के समय न्यायिक-विवेक पर अंकुश बना रहे। परन्तु उल्लेखनीय है कि वर्तमान समय के विधायनों में न्यायिक विवेक का अधिकाधिक महत्व दिया जा रहा है ताकि अपराधी के सुधार तथा पुनर्स्थापन का लक्ष्य साध्य हो सके जो कि दण्ड विधि का मुख्य उद्ेश्य है। दण्ड विधि में अन्तर्निहित दण्ड का भय लोगों को अपराधों से परावृत्त रखता है क्योंकि दण्ड के अभाव में व्यक्ति की स्वच्छन्दता पर अंकुश रखना कठिन हो जाता है और अराजकता को बढ़ावा मिलने की सम्भावना बनी रहती है।

दक्षिणी राजस्थान के जनजाति क्षेत्र में अपराध वर्तमान युग की एक जटिलतम समस्या है और विश्व के सभ्य राष्ट्र अपराध रोकने के लिए प्रतिवर्ष विपुल धनराशि खर्च करते आ रहे हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में तो बाल-अपराध रोकने के लिए पंचवर्षीय योजना तक का आयोजन किया जा रहा है और विश्व के

विभिन्न देशों के विश्वविद्यालयों में अपराध-शास्त्र एक स्वतन्त्र विषय बन गया है। जनजाति क्षेत्र में जहाँ अपराधों की दर में निरन्तर वृद्धि हो रही हैं वर्तमान समय में अपराध के अध्ययन और अपराध-निरोधक उपायों की सक्त आवश्यकता है।

> ''अपराध वे अवैधानिक कार्य है जिनके साबित हो जाने पर न्यायालय अपराधियों को दण्ड देता है और ऐसे दण्ड में कमी करने का एक मात्र अधिकार राज्य को होता है।''
>
> - ऑस्टिन

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिक प्राणी होने के नाते उसकी अनेक आवश्यकतायें हैं। इस आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सम्पत्ति की आवश्यकता है और सम्पत्ति विवाद को जन्म देती है।

आरम्भ में जब मनुष्य जंगली एवं बर्बर था , तब न तो उसकी कोई आवश्यकतायें थी और न ही किसी प्रकार का विवाद। प्रकृति से ही वह अपनी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेता था। लेकिन ज्यांे-ज्यों व समय एवं सामाजिक होता गया , त्यों-त्यों उसकी आवश्यकतायें बढ़ती गई और सम्पत्ति के प्रति मोह भी। इसी मोह ने विवाद एवं लड़ाई-झगड़ों को जन्म दिया।

हर व्यक्ति अपने निजी जीवन में स्वतन्त्र एवं स्वछन्द रहना चाहता है वह उसमें किसी अन्य व्यक्ति का हस्तक्षेप पसन्द नहीं करता। यदि कोई व्यक्ति उसमें हस्तक्षेप करता है तो ऐसे व्यक्ति को पीडा, क्लेश अथवा हानि हो सकती है, चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक, सम्पत्ति सम्बन्धी हो या प्रतिष्ठा सम्बन्धी।

इस प्रकार इन सब से यह स्पष्ट होता है कि किसी व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति के निजी जीवन, सम्पत्ति एवं अधिकारों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए और न ही ऐसा कोई कार्य करना चाहिये जिससे उसको शारीरिक अथवा मानसिक पीड़ा पहुँचे या सम्पत्ति सम्बन्धी कोई हानि कारित हो। साथ ही उसे ऐसा कार्य करने के लिए भी तत्पर रहना चाहिये जो दूसरे व्यक्ति के अधिकारों के न्योयोचित उपयोग-उपभोग के लिये आवश्यक हो। यदि कोई व्यक्ति इसके प्रतिकुल व्यवहार करता है

तो यह कहा जायेगा कि उसने अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह नहीं किया अर्थात वह कर्त्तव्य भंग का दोषी माना जायेगा विधिक भाषा में इसे ही हम अपराध की संज्ञा दे सकते है।[9]

वर्तमान में अपराध के प्रति नई अवधारणा का जन्म हुआ कि अपराध का सीधा सम्पर्क तथा संबंध सामाजिक नीति के कारण होता है और वर्तमान में अपराध को इस पाप और अनैतिक कार्य न मान कर एक सामाजिक घटना माना जाने लगा है क्योंकि वर्तमान में कार्लमार्क्स की सामाजिक अवधारणा का प्रभाव विधिशास्त्र तथा अपराध शास्त्र पर भी आया है और इतिहास के अनुसार देखने पर यह प्रतीत हुआ है कि अपराध भी एक परिवर्तनशील अवधारणा है जो देश , काल, परिस्थिति के अनुसार बदलती रहती है। किसी स्थान पर कोई कार्य अपराध होता है जबकि वहीं कार्य अन्य लोगों तथा स्थान पर अपराध नहीं होता है क्योंकि अपराधों की वैधता तथा स्वीकार्यता समाज के परम्परागत आदर्श तथा मूल्यों पर आधारित होती है जैसे राजस्थान के कुछ क्षेत्रों में मौताणा , डाकन, जादू-टोना, चोरी, डकैती, लूट, हत्या, अपहरण, बलात्कार, नाता प्रथा का प्रचलन है और विशेष कर आदिवासियों में यह मान्य होती है इसी प्रकार जिस राज्य में शराब निषेध होती है वहाँ पर अपराध होता है। शराब के सेवन परन्तु जिस राज्य में शराब वैध होता है वहाँ पर शराब का सेवन अपराध नहीं माना जाता है इसी प्रकार इग्लैण्ड और भारत में जारता (।कनसजतल) का उदाहरण होता है।

अपराधों में समय के साथ-साथ समाज बदलने के कारण बदलाव भी होता है जब भारतीय समाज में दहेज का प्रभाव बढ़ा तो दहेज प्रतिषेध अधिनियम 1961 का जन्म हुआ और जब महिला के साथ घर की चार दीवारी में ही अपराधों को बढ़ावा मिला तो भारतीय दण्ड संहिता में धारा 304ठ तथा 498। इत्यादि नये प्रावधान किए गए है। इस प्रकार के अपराधों की रोकथाम के लिए लिए गए तथा वर्तमान में घरेलु हिंसा रोकथाम अधिनियम भी आ चुका है।

---

[9] डॉ. ना.वि. परांजपे (2007), अपराध शास्त्र एवं दण्ड प्रशासन , सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन्स , इलाहाबाद, पृ. 13

आजादी के बाद भारतीय समाज तथा साथ-साथ आदिवासी समाज के सामाजिक ढाँचे में आमूल चूल परिवर्तन हुए है और इसी कारण अपराधों के प्रकार एवं संख्या में अभूतपर्वू वृद्धि हुई है क्योंकि वर्तमान में जनसंख्या वृद्धि , मूल्यों में कमी, वैज्ञानिकता तथा तकनीकी के प्रयोग ने भी अपराधों को बढ़ाया है।

इतिहास में मानव जीवन के साथ-साथ सामाजिक परिस्थितियों में होने वाले परिवर्तन जो शासक अथवा विशेषाधिकार वर्ग के विपरीत थे उन्हें अपराध की श्रेणी में डाल दिया जाता था। प्राचीन हिन्दू धर्मशास्त्रों में अनेक स्थानों पर यह उल्लेख मिलता है कि अपराधी को अपराध से मुक्ति देने या दोष सिद्ध करने के लिए अग्नि परीक्षा से गुजरना होता था और इस परीक्षा में देवी का रूप अग्नि को माना जाता था इस परीक्षा का मूल आधार था कि न्याय के रूप में ईश्वर की इच्छा अथवा अभिव्यक्ति को दर्शाया जाता था कि ईश्वर यदि व्यक्ति को दण्ड देना चाहता है तो उसे अग्नि परीक्षा में ही दण्ड दे अथवा उसे निर्दोष साबित कर दे। इसके अलावा पानी में डूबोकर परीक्षा अथवा शपथ पर भी न्याय किया जाता था।

दक्षिणी राजस्थान के आदिवासी क्षेत्रों में कई स्थानों पर प्राचीन समय के साथ चली आ रही अपराध एवं उनके दण्ड विधान की परम्परा प्रायः देखने को मिलती है। जैसे आदिवासीयों ने कोड़े के मारना , डाकन पर पत्थर मारना अथवा किसी भी अपराधी को अग्नि से गर्म लोहे कि छड़ से गोदना इत्यादि दण्ड देने के प्रकार प्राचीन भारत के दण्ड शास्त्र को परिलिक्षित करते हैं।

समय के साथ-साथ मानव की तर्क एवं वैचारिक शक्ति का भी विकास हुआ है और मध्यकाल में राज्य के राजा अथवा शासक वर्ग ने अपराधी को दंडित करने का दायित्व अपने उपर ग्रहण कर लिया था इसी प्रकार की विचारधारा का जन्म दक्षिण के आदिवासी क्षेत्र में हुआ था और मध्यकाल में मेवाड़ , डूंगरपुर, प्रतापगढ़, बांसवाड़ा, उदयपुर एवं सिरोही के शासक वर्ग सामान्य वर्ग के अपराधियों के दण्ड देने के साथ-साथ आदिवासी समूहों अथवा लोगों को भी अपराध करने पर दण्ड प्रदान करने लगे यद्यपि यह अवसर मध्यकाल में बहुत कम ही आया था

क्योंकि आदिवासी अपने आपसी विवादों तथा अपराधों को आपस में अपने प्राचीन रीति रिवाज एवं परम्पराओं के माध्यम से हल कर लेते थे।

अंग्रेजों के आगमन के बाद भारत की सामाजिक , आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक जीवन में आमूल-चूल परिवर्तन हुए और भारत की प्राचीन हिन्दू दण्डशास्त्र तथा मुस्लिम मध्यकाल दण्ड शास्त्र की अवधारणा एवं व्यवस्था को अंग्रेजों ने समाप्त करने की पुरजोर चेष्ट की और समय के साथ वो काफी सीमा तक सफल भी रहे और मेवाड़ राज्य क्षेत्र तथा राजस्थान का दक्षिणी आदिवासी क्षेत्र में भी सामान्य जन में अंग्रेजी अपराधों की अवधारणा तथा दण्डशास्त्र प्रचलित हो गया। दक्षिण राजस्थान के सभी राजाओं ने अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार करके विधि के क्षेत्र में अंग्रेजी की नीतियों को अपनाने लग गये और अंग्रेजों में विधियों का संहिताकरण करना प्रारम्भ कर दिया तथा विधियों को लागू करने के लिए इग्लैण्ड की भांति न्यायालय सभी स्थानों पर लागू कर दिये गये इसी प्रकार दक्षिणी राजस्थान में भी अंग्रेजी न्याय व्यवस्था लागू हो गई।

यद्यपि अंग्रेजों के विधिशास्त्र और दण्डशास्त्र का व्यापक प्रभाव समस्त देश में हुआ परन्तु दक्षिण राजस्थान का आदिवासी समाज देश के अन्य आदिवासी समाजों के भांति अंग्रेजों के इन परिवर्तनों से अछूते रहे और आदिवासी समाज अपने प्राचीन परम्पराओं, नियमों तथा दण्ड देने की रीतियों को ही अपनाता रहा। इसका मुख्य कारण यह था कि आदिवासी समाज गहन जंगलों तथा पहाड़ों में रहता है और सामान्यता मुख्य समाज से एक अघोषित दूरी बना कर रखता है और इसी दूरी के कारण आदिवासी समाज में लम्बे समय तक अलग रहने के कारण समाज में हो रहे परिवर्तनों का ज्यादा असर नहीं हो पाता है और आदिवासी अपने रीति रिवाजों से प्रायः जुड़े रहते हैं और मुख्य समाज में होने वाले बदलावों से अनिभिज्ञ रहते है। दूसरा मुख्य कारण अंग्रेजों के समय बदलाव न होने का यह था कि स्वयं अंग्रेेजों को भी आदिवासीयों से कोई सरोकार नहीं था अंग्रेज लाभ को देखते थे और आर्थिक दृष्टि से अंग्रेजो को आदिवासियों में कोई भी काम नजर नहीं आता था जबकि मध्यकाल के राजा अपने राज्य की

सुरक्षा एवं व्यवस्था के लिए इन आदिवासियों को आवश्यक मानते थे। इस कारण से वे राजा आदिवासीयों से सीधा सम्पर्क रखते थे परन्तु अंग्रेजों को ऐसी आवश्यकता नहीं थी इसलिए अंग्रेजों ने आदिवासीयों से कोई ज्यादा सम्पर्क नहीं किया और आदिवासीयों के रहन-सहन में समय के साथ कोई बदलाव नहीं आया। परन्तु दक्षिणी राजस्थान के आदिवासी समाज में मावजी महाराज , गोविन्द गुरू, नानाभाई खांट , काली बाई , स्वामी स्वतन्त्रतानन्द , भोगीलाल पण्ड्या , मोतीलाल तेजावत तथा हरिदेव जोशी जैसे लोगों ने जागृति पैदा करने की पुरजोर कोशिश की।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत का लक्ष्य सबका समान उत्थान रहा और वे लोग जो समाज की मुख्य धारा से वर्षों तक दूर रहे है उन आदिवासी समाजों का कल्याण करना जरूरी था अथवा सच्चे समाजवाद की स्थापना की अवधारणा फलीभूत नहीं हो सकती थी तब संविधान निर्माताओं ने संविधान तथा अन्य विधियों में आदिवासीयों के जन कल्याण के लिए अनेक प्रकार के प्रावधानों का निर्माण किया गया हैं जिनका विवेचन आगे के अध्यायों में विस्तृत रूप वर्णन है और अनुच्छेद 366(25) में आदिवासी समाज को भारतीय विधि के अधीन अपने रीति रिवाजों को पूर्णरूप से मानने की स्वतन्त्रता प्रदान की गई है और अनेक योजनाओं के माध्यम से आदिवासी समाज को राष्ट्र की मुख्य धारा में लाने का प्रयास किया जा रहा है।

वर्तमान में दक्षिण राजस्थान का आदिवासी समाज बहुत तेजी से समाज के साथ घुल मिल रहा है और इसी कारण से आदिवासी लोगों के जीवन में काफी परिवर्तन आ गया है। इनमें प्राचीन समय के रीति रिवाजों में बदलाव धीरे-धीरे देखा जा रहा है और प्राचीन समय में होने वाले अपराधों के साथ-साथ नवीन समाज में होने वाले अपराधों के बढ़ने की प्रवृति देखी जा रही है। और इसी कारण से आदिवासी समाज में एक संक्रमण काल चल रहा है। जिसमें एक स्थान पर यह समाज अपने पुरातन मान्यताओं और परम्पराओं को निर्वहन करता हुआ दिखाई देता है और दूसरी और नवीन प्रवृतियों ने उसे आधुनिक मान्यताओं और

रीति रिवाज के अपनाने पर मजबूर कर दिया है इसी प्रकार से आदिवासीयों के क्षेत्रों में होने वाले अपराधों तथा उनकी अवधारणाओं में भी परिवर्तन निरन्तर देखा जा रहा है। एक ओर आदिवासी समाज में प्राचीन और परम्परागत अपराध प्रचलित और उनके विरूद्ध दण्ड देने का तरीका भी और दूसरी ओर मुख्य समाज के सम्पर्क में आ जाने के बाद नवीन तथा आधुनिक अपराधों की संख्या भी आदिवासी समाज में बढ़ी है और इस कारण से आदिवासी इन अपराधों के दण्ड शास्त्र को नहीं जानते है इसलिए अब न्यायालयों की शरण ले रहे हैं जिससे इनका जीवन दो परिदृश्यों में चल रहा है एक प्राचीन और परम्परागत जीवन तथा दूसरा आधुनिक जीवन। इसी प्रकार आदिवासी क्षेत्र की निवासी दो प्रकार के अपराधों का सामना कर रहे हैं और उनके दो प्रकार के दण्ड निवारण के तरीकों को भी शोधकर्ता ने दक्षिणी राजस्थान के आदिवासी समाज में प्रचलित तथा बदलते हुए अपराधों की अवधारणा को समस्या के बारे में चुना है जो कि समयानुसार एक गंभीर और ज्वलंत समस्या बनी हुई है। शोधकर्ता स्वयं दक्षिण राजस्थान के आदिवासी समाज का ही सदस्य है और आदिवासी समाज तथा उसमें होने वाले अपराधों तथा उनकी गम्भीरता को भलीभाँति देखा है और उनके पीछे होने वाले कारणों तथा उनकी रोकथाम के उपाय में गहरी रूचि रखता है। इसी कारण से तथा समय की माँग होने से इस बिन्दू पर शोध कार्य की महती आवश्यकता होने के कारण यह कार्य किया जा रहा है।

प्रस्तुत अध्ययन के प्रथम अध्याय में प्रस्तुत शोध समस्या की प्रस्तावना तथा उद्देश्य को दर्शाया गया है और दक्षिण राजस्थान के आदिवासी क्षेत्र में किस प्रकार के अपराध प्रचलित है इनके प्रचलन तथा मनोवृति की अवधारणा का विवेचन किया गया है और साथ ही अपराधों का वर्गीकरण व्यस्थित ढंग से किया गया है।

द्वितीय अध्याय में द्रिक्षण राजस्थान क्षेत्र में प्रचलित अपराध का विवेचन किया गया है। दक्षिण राजस्थान के आदिवासी समाज में वर्तमान परिस्थितियों में दो प्रकार के अपराधों का प्रचलन है पहले वो अपराध जो वर्तमान मे मुख्य समाज

के सम्पर्क में आदिवासी समाज के आने से शुरू हूए है और दूसरे वो अपराध जो प्राचीन काल से ही परम्परागत तरीके से आदिवासी समाज में चले आ रहे है।

तृतीय अध्याय में आदिवासी समाज में जिन अपराधों का प्रचलन है उन अपराधों के प्रचलन के क्या कारण है उनका क्रमबद्ध अध्ययन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में दक्षिणी राजस्थान के जनजाति क्षेत्रों में प्रचलित अपराधों के कारण आदिवासी समाज तथा अन्य समाज पर सामाजिक , आर्थिक, राजनैतिक तथा धार्मिक प्रभावों को प्रस्तुत किया गया है।

पंचम अध्याय में जनजातिय क्षेत्रों में घटित होने वाले अपराधों के घटित होने तथा उनकी रोकथाम में राज्य की विस्तृत भूमिका पर प्रकाश ड़ाला गया है और वर्तमान परिदृश्य में राज्य किस प्रकार इन अपराधों से जनजाति समाज को संरक्षित करने के लिए किस प्रकार की योजनाओं का क्रियान्वन कर रहा है। उसको प्रस्तुत किया गया है।

छठे अध्याय में इस अध्याय के अधीन जो सर्र्वेक्षेण द्वारा आंकडों को एकत्रित किये गये है और वो आंकडे किस क्षेत्र से तथा किन व्यक्तियों के माध्यम से किये गये है उनका क्रमबंद्ध तथा व्यस्थित रूप से वर्णन किया गया है।

सप्तम अध्याय में वर्तमान समय में राज्य तथा सरकार और अन्य समूहों के द्वारा जनजाति क्षेत्रों में प्रचलित अपराधों को दूर कैसे किया जाए एवं उनके उपायों पर विस्तृत विवेचन किया गया है तो उपाय जो वर्तमान में जनजाति क्षेत्रों में कार्यरत है और उनका प्रभाव किस प्रकार समाज पर विशेषकर जनजाति समाज पर हो रहा है उसका विस्तार से वर्णित किया गया है।

और अतः में अष्ठम अध्याय में प्रस्तृत अध्ययन का निष्कर्ष तथा अपराधों के प्रभाव और उनकी रोकथाम के सुझावों को वर्णित किया है।

(ब) अपराधों की अवधारणा

सभ्यता के उच्चतम आदर्शों की उपलब्धि के साथ-साथ समाज के प्रति अपने दायित्वों और कर्त्तव्यों के बोध की ओर भी जनजाति क्षेत्र के लोगों का रूझान निरन्तर विकसित होता रहता है। असंख्य बलिदान , अथक प्रयास और निरन्तर चिन्तन ने यद्यपि आज लोगों को सह-अस्तिŸव भाई-चारा और मानवता पर आधारित जीवन की ओर अग्रसर किया है , फिर भी समाज में अपराधों का अस्तिŸव निरन्तर बढ़ रहा है मानवतावादी विचारकों के समस्त प्रयास मानव समाज को अपराध रहित बनाने में असफल रहे है वास्तव में मानव सामाजिक बनने के पूर्व और सामाजिक बनने के बाद भी स्वार्थ , क्रोध, ईर्ष्या, लोभ और अहमन्यता जैसे दुर्गुणों का न्यूनाधिक मात्रा में शिकार हो रहा है। इसके परिणामस्वरूप अस्ति Ÿव, प्रतिष्ठा एवं सत्ता-प्राप्ति के लिए मनुष्य सदैव से संघर्षरत रहा है मानव का यह संघर्ष केवल अन्य प्राणियों के विरूद्ध ही नहीं रहा। मनुष्य के विरूद्ध भी रहा है यदि हम मानवता के इतिहास का अवलोकन करे तो यह निश्चित हो जाता है कि मानव पर सर्वाधिक घातक एवं जघन्य आक्रमण मानव द्वारा ही किये गये है, साथ ही यह भी स्पष्ट होता है कि अपराध मानव समाज का एक अभिन्न अंग रहा है। अपराध उतनी ही चिरस्थायी , वास्तविक एवं अवश्यम्भावी हैं जितना कि समाज। समाज की तरह ही अपराध भी एक बाह्र सत्य एवं वस्तुनिष्ठ वास्तविकता है मानव जीवन में रोग एवं मृत्यु की ही भाँति समाज में अपराध भी सदैव से व्याप्त रहे है। इसका अभिप्राय यह कि जब से समाज है तभी से अपराध भी है और जब तक समाज रहेगा तब तक किसी न किसी रूप में अपराध भी रहे भी रहेंगे अपराध विहीन समाज का अस्तिŸव एक कोरी कल्पना मात्र है जिसे कभी साकार नहीं किया जा सकता है। मानवता की प्रगति एवं विकास के साथ अपराधों की प्रकृति और स्वरूप में भी वृद्धि हो रही है कुछ प्राचीन काल में होने वाले अपराध अब लुप्तप्राय हो गये है और नये-नये प्रकार के अपराधों का जन्म जनजाति क्षेत्र में होता दिखाई दे रहा है।

अपराध की परिभाषा

''अपराध'' शब्द जितना प्रचलित है उसकी परिभाषा देना उतना ही कठिन है। इसकी अभी तक कोई एक सर्वसम्मत परिभाषा नहीं दी जा सकी है हम यहाँ कुछ परिभाषाओं का अध्ययन करते है।

अपराध मानव व्यवहार हैं , किन्तु हम सभी मानव-व्यवहारों को अपराध नहीं कह सकते। केवल वे ही मानव-व्यवहार अपराध है जो सामाजिक मूल्यों के प्रतिकुल होते है और जिनसे समाज को हानि पहुँचती है। अपराध सामाजिक विघटन की एक महत्त्वपूर्ण समस्या है और वैयक्तिक विघटन का जटिल रूप व्यक्ति का अपराधी होना है।

जनजाति समाज में अपराध मकड़ी के ताने-बाने की तरह फैला हुआ है। यह मात्र एक दुर्घटना के रूप में समाज में घटित नहीं होता। अपराध की गंभीरता उसकी प्रकृति और उसका प्रकार ये सब समाज की स्थितियों के अनुरूप होते हैं। अच्छे व्यक्ति, जो अपराधी को एक अच्छा नागरिक बनाना चाहते है पुलिस शक्ति को जो पुर्नगठित देखना चाहते हैं, अपराध न्याय में जो तत्परता चाहते है और जो लोग बन्दी-गृहों में सुधार की कामना करते है अपने लक्ष्य पर विलम्ब से गलत निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। अपराध की कहानी तो बहुत पहले से ही प्रारम्भ हो चुकी होती है और यह कहानी उसी वातावरण में प्रारम्भ होती है जिसमें रहकर अपराधी का विकास होता है।

सामाजिक और कानूनी अवधारणा

अपराध एक सार्वभौमिक स्थिति है। प्रत्येक समाज के कुछ नियम होते है इनका निर्माण समाज के हित के लिए किया जाता है ये नियम समाज की व्यवस्था को बनाए रखते है। जो व्यक्ति अपने समाज के नियमों का पालन करते है, समाज उनका आदर करता है। परन्तु कुछ नियम ऐसे भी होते है जो किसी विशेष कारण अथवा परिस्थितिवश समाज के इन नियमों का पालन नहीं करते है। वे समाज द्वारा स्वीकृत प्रतिमानों के अनुकूल व्यवहार करते है। जब व्यक्ति

समाज-स्वीकृत प्रतिमानों के प्रतिकुल आचरण करता है और जिन्हें वहाँ का राज्य समाज विरोधी कार्य मानकर दण्डनीय स्वीकार करता है तब इन आचरणों को अपराध की संज्ञा दी जाती है। ऐसे समाज विरोधी कार्यों को नीति शास्त्र अनैतिक मानता है, धर्म शास्त्र इनको पाप समझता है और समाज-शास्त्र इनको अपराध मानता है। साथ ही आदिम जनजाति समाजों में अपकृत्य के नाम से जाना जाता है।

अपराध एक सार्वभौमिक होते हुए भी इसकी व्याख्या में सार्वभौमिकता का अभाव है इसका मुख्य कारण यह है कि अपराध की व्याख्या देश काल क्षेत्र और परिस्थितियों के अनुकूल होती है जैसे बलात्कार को अनेक देशों में एक छोटी सी भूल के रूप में स्वीकार किया जाता है जबकि भारत में यह एक भयंकर अपराध है। अपराध की व्याख्या में कानूनी और समाज शास्त्रीय दोनों ही दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है।

(1) अपराध की कानूनी व्याख्या

कानूनी दृष्टिकोण से ऐसा कोई भी कार्य और व्यवहार अपराध है जिसे कानून वर्जित करता है। इस परिभाषा के अनुसार अपराधी वह व्यक्ति होगा जिसे न्यायालय द्वारा दोषी प्रमाणित किया जाए और सिद्ध दोष के लिए दण्डित किया जाए। यदि कोई व्यक्ति अपराध करता है , किन्तु न्यायालय में अपराध सिद्ध न होने से बरी हो जाता है तो कानूनी दृष्टिकोण से उस व्यक्ति को अपराधी नहीं माना जाता है अपराध की कुछ कानूनी परिभाषाएँ इस प्रकार है।

सर विलियम ब्लैक स्टोन[10] ने अपनी पुस्तक इगलैण्ड के कानूनों की टीका में अपराध को लोक-विधि के उल्लंघन में वह कार्य माना है जो विधि द्वारा निषिद्ध अथवा समादेशित हो , इसी पुस्तक में उन्होंने पुनः यह कहा है कि अपराध लोक अधिकारों व समग्र समुदाय के प्रति देय कर्त्तव्यों का उल्लंघन है।

---

[10] डॉ. एस.एस. श्रीवास्तव (2013), ''भारतीय दण्ड संहिता ''; युनिवर्सिटी बुक हाऊस , (प्रा.) लि. जयपुर, पृ.सं. 2

आस्टिन के अनुसार [11] वह दोषपूर्ण कार्य जिसकों उत्पीडित पक्षकार या उनके प्रतिनिधियों की ओर से लक्ष्य बनाया जाए दुष्कृति है तथा वह दोषपूर्ण कार्य जिसे सम्प्रभु या उनके अधीनस्थ व्यक्तियों द्वारा लक्ष्य बनाया जाए अपराध है।

प्रोफेसर केनी [12] ने अपराध की परिभाषा देते हुए यह कहा कि यह वह सदोष कार्य है जिसके लिए दण्डात्मक स्वीकृति होती है तथा जिसके किसी व्यक्ति द्वारा स्वयं छूट नहीं दी जा सकती है यदि किसी भी तरह छुट दी जाती है तो केवल राज्य द्वारा''

प्रोफेसर विनफील्ड [13] ने अनुसार छूट का तात्पर्य क्षमादान से है। यह परिभाषा भी आलोचना योग्य है उदाहरणार्थ , भारतीय दण्ड सहिता के अधीन परिभाषित अपराधों को करने पर न केवल राज्य क्षमा कर सकता है वरन कुछ प्रभावित व्यक्तियों द्वारा भी शमनीय है।

भारतीय दण्ड सहिता 1860 की धारा 40 में अपराध की परिभाषा के उपबन्ध किये गये है इस धारा के खंड 2 और 3 में वर्णित [14] अध्यायों और धाराओं के सिवाय 'अपराध' शब्द इस संहिता द्वारा दण्डनीय की गई किसी बात का घोतक है।

अध्याय 4 अध्याय 5 क और निम्नलिखित धारा अर्थात धारा 64, 65, 66, 67, 71, 109, 110, 112, 114, 115, 116, 117, 187, 194, 195, 203, 211, 213, 214, 221, 222, 223, 224, 225, 327, 328, 329, 330, 331, 347, 348, 388, 389, और 445 में अपराध शब्द इस संहिता के अधीन या एतस्मिन पश्चात यथा परिभाषित विशेष या स्थानीय विधि के अधीन दण्डनीय बात को घोतक है।

---

11 प्रो. त्रिदिवेश भट्टाचार्य (2010), ''भारतीय दण्ड संहिता- 1860'', सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी , इलाहबाद।

12 वही।

13 डॉ. एस.एस. श्रीवास्तव (2013), ''भारतीय दण्ड संहिता ''; युनिवर्सिटी बुक हाऊस , (प्रा.) लि. जयपुर, पृ.सं. 2

14 राजाराम यादव, 2005, ''भारतीय दण्ड संहिता'', 1860, सेन्ट्रल पब्लिकेशन, इलाहाबाद।

और धारा 141, 176, 177, 201, 212, 216, और 441 में अपराध शब्द का अर्थ उस दशा में वही है जिसमें विशेष या स्थानीय विधि के अधीन दण्डनीय बात ऐसी विधि के अधीन छः मास या उससे अधिक अवधि के कारावास से चाहे वह जुर्माने सहित या रहित दण्डनीय हो,

हेकरवाल - ''अपराध कानून का उल्लंघन है।''

माउसर- ''अपराध वह क्रिया है जिससे कानून का उल्लंघन होता है।''

लेंडिस एवं लैण्डिस के अनुसार [15] ''अपराध वह क्रिया है जिसे राज्य ने सामूहिक कल्याण के लिए हानिकारक घोषित कर दिया है और जिसके लिए राज्य दण्ड देने की क्षमता रखता है ''। पैपन के मतानुसार अपराध अपराधी कानून के उल्लंघन का सोद्देश्य कार्य है जो बिना औचित्य अथवा प्रतिरक्षा के किया जाता है

स्टीफेन के अनुसार अपराध से अभिप्राय ऐसे अधिकारों के अतिक्रमण से हैं जिसका परिमाप उस अतिक्रमण से सम्बन्धित समाज में फैली हुई दुष्कृतियों से हो। उनका ही कहना है अपराध अधिकार का वह उल्लंघन है जिसकी दुष्प्रवृति की भावना सम्प्रदाय के सन्दर्भ में हम देख सकते है।

एक अमरीका लेखक मिलर ने अपराध को वह कार्य अथा लोप बतलाया है जिसे राज्य अपने नाम से चलाई गई किसी कार्यवाही के माध्यम से दण्ड के अधिरोपण की धमकी के साथ करने को निषिद्ध अथवा समादिष्ट करता है। यह परिभाषा कम आलोचना का विषय बनी है

कीटन[16] भी इसी प्रकार , आज के संदर्भ में किसी ''ऐसे अवांछनीय कृत्य'' को अपराध की संज्ञा देते है ''जिसे सुधारने के लिए राज्य शास्ति के अधिरोपण हेतु कार्यवाही को संस्थित करने में न कि क्षत पक्षकार के हाथों में उपचार को

---

15 डॉ. एम.एम. लवानिया (1983), अपराध और अपराधी व्यवहार का समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, रिसर्च, दिल्ली, पृ.सं. 2.

16 डॉ. मुरलीधर चतुर्वेदी (2007), ''अपराध शास्त्र एवं दण्ड शास्त्र '', लॉ एजेन्सी पब्लिकेशन इलाहाबाद, पृ.सं. 11.

छोड देने में, अपने को अधिक सुविधानुकूल स्थिति में पाता है '' इसी भाव बोध के साथ पेटन ने अपराध का सामान्य परिलक्षण राज्य द्वारा प्रक्रिया को नियंत्रित रखना, दण्ड का परिहार और दण्ड का अधिरोपण करना बतलाया है।

पाल डब्ल्यू. टप्पन[17] ने भी अपराध को वह आशायित कार्य अथवा लोप बताया है जो दण्ड विधि के अतिलांघन में किया गया हो , और जिसके पीछे विधि द्वारा स्वीकृत कोई'' बचाव'' अथवा ''न्यायानुमति'' न हो।

टप्पन की इस परिभाषा से केवल पारम्परिक अपराधों का बोध होता है , नये सामाजिक और आर्थिक अपराधों का नहीं, क्योंकि इन अपराधों में अपराध का आवश्यक संघटक वैसा नहीं होता जैसा कि हत्या और चौरी जैसे पारम्परिक अपराधों में होता है आज के आधुनिक समाज में अपराध का विभाजन चार श्रेणीयों में किया जा सकता है।

(1) ऐसे अपराध, जिनमें दुराश्य की उपस्थिति अनिवार्य मानी जाती है जैसे हत्या चोरी आदि।

(2) ऐसे अपराध, जिनमें यद्यपि दुराशय की उपेक्षा की जाती है। परन्तु उसकी अपनी एक विशेष प्रकृति होती है जैस-काला बाजारी

(3) ऐसे अपराध जिन्हें कठोर उत्तर दायित्व के अधीन रखा जाता है जैसे खाद्य एवं पदार्थों के अपमिश्रण के मामले।

(4) ऐसे अपराध, जिनमें नैतिक दाण्डिकता विवाद की वस्तु होती है , जैसे कराप वंचन।

अतः यह स्पष्ट है कि हर अपराध में किसी कार्य अथवा लोप का साशय होना आवश्यक नहीं है। पुनः टप्पन की परिभाषा में अपराध को बचाव अथवा 'न्यायानुमति'' विहिन कार्य बतलाया गया है वरन् कोई ''बचाव'' अथवा न्याननुमति दण्ड विधि के अन्तर्गत ही उपलब्ध हो सकता है। अतः यदि किसी दण्ड विधि के अन्तर्गत किसी विशेष कार्य अथवा लोप के लिये किन्हीं

---

[17] डॉ. एम.एम. लवानिया (1983), अपराध और अपराधी व्यवहार का समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, रिसर्च, दिल्ली, पृ.सं. 2.

परिस्थितियों में इस प्रकार कोई ''बचाव'' अथवा न्यायनुमति प्रदान की गई है तो यह प्रश्न ही नही उठता कि ऐसा किया गया। कार्य उस दण्ड विधि के अतिलंधन में किया गया है। टप्पन ने यदि यह कहा होता कि दण्ड विधि के अपरिक्षण में किया गया कार्य अथवा लोप है तो उनकी परिभाषा एक पूर्ण परिभाषा मानी जाती।

हैल्सबरीज लाज ऑव इंग्लैण्ड में यह कहा गया है कि अपराध वह अवैधानिक कृत्य या व्यतिक्रम है जो लोक प्रतिकुल है तथा कृत्य अथवा व्यक्तिक्रम के लिए दोषी व्यक्ति विधि पूर्ण दण्ड के लिए उत्तरदायी है।''

भारतीय उच्चतम न्यायालय के अनुसार-

अपराध को ऐसे कार्य के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है जिसमें उसके कर्त्ता को विधिक दण्ड दिया जा सकता है। अपराध उस कार्य को किये जाने के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है जो विनिर्दिष्ट रूप से विधि द्वारा निर्षिद्ध है वह सदाचार अथवा सामाजिक व्यवस्था के विरूद्ध भी एक दण्डनीय अपराध हो सकता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं का सूक्ष्म विवेचन करने से हमें अपराध की जो प्रकृति अथवा उसका जो चित्त दिखलाई पड़ता है, उसे निम्न शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है।

(1) अपराध एक ऐसी क्षति है जो किसी मानव द्वारा उसके असामाजिक कृत्यों के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई है और जिसे संप्रभु नहीं चाहता।

(2) इसके निवारण के लिये राज्य अनुशास्ति अथवा दण्ड की धमकी देता है।

(3) अपराधकर्त्ता के दोष अथवा निर्दोष का विचारण विशिष्ट विधिक कार्यवाहियों के अन्तर्गत संचालित है और साक्ष्य के विशिष्ट नियमों द्वारा उसका प्रतिपालन होता है।[18]

---

[18] डॉ. मुरलीधर चतुर्वेदी (2007), ''अपराध शास्त्र एवं दण्ड शास्त्र'', लॉ एजेन्सी पब्लिकेशन इलाहाबाद, पृ.सं. 12-13.

अपराध इस रूप में एक ऐसा उपकार है जो नैतिक अथवा सिविल अपकार से भिन्न है , और किसी दण्ड विधि द्वारा दण्डनीय बनाया गया है। [19] भारतीय दण्ड संहिता के संदर्भ में यह किसी ऐसी बात का घोतक है जो स्वयं इस संहिता द्वारा अथवा किसी विशेष या स्थानीय विधि के अधीन दण्डनीय बनाया गया है। यहाँ विशेष विधि का तात्पर्य उस विधि से है , जो किसी विशिष्ट विषय को लागू हो,[20] जैसे उत्पाद शुल्क अधिनियम , अफीम अधिनियम, पशु अतिचार अधिनियम, रेल अधिनियम आदि। इसी प्रकार स्थानीय विधि का तात्पर्य वह विधि है जो भारत के किसी विशिष्ट भाग को ही लागू हो [21] जैसे पोर्ट इस्ट एक्ट , राजस्व अधिनियम आदि।

दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 2 (ढ) के अन्तर्गत इसी प्रकार का भाव बोध व्यक्त किया गया है। इस धारा के अन्तर्गत ''अपराध'' से कोई ऐसा कार्य या लोप अभिप्रेत है , जो किसी तत्समय प्रवृत विधि द्वारा दण्डनीय बना दिया गया हो, और उसके अन्तर्गत कोई ऐसा कार्य भी हैं जिसके बारे में पशु अतिसार अधिनियम, 1871 की धारा-20 के अधीन परिवाद किया जा सकता है। दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की यह परिभाषा इस प्रकार अत्यन्त व्यापक प्रवर्तन से युक्त है और हर वह कार्य या लोप ''अपराध'' की कोटि में आ जाता है, जो किसी तत्समय प्रवृत विधि द्वारा दण्डनीय बना दिया गया हो।[22]

आज का आधुनिक युग औद्योगिक क्रान्ति , संचार के त्वरित साधनों एवं वैज्ञानिक अनुसंधानों के परिणामस्वरूप नित्य नवीन रूप ग्रहण करता जा रहा है। व्यक्ति का जीवन भी अत्यन्त जटिल और वैज्ञानिक होता जा रहा है आज के समय में जर , जोरू, और जमीन ही अपराध को पीछे छोड़कर आज का उच्च सामाजिक स्थिति में रहने वाला मानव , नित्य ऐसे नवीन अपराधों का अन्वेषण कर रहा है जो दण्ड संहिता अथवा दाण्डिक कानून से परे विशुद्ध रूप से एक

---

19 रतनलाल तथा धीरजमल, 2010 भा.द.सं. 1860 Levis Nexix Butter Worths Wadhawa

20 वही, धारा 41, भा.द.सं. 1860

21 वही, धारा 42, भा.द.सं. 1860

22 रतनलाल तथा धीरजमल, 2001, भा.द.प्र.सं. 1973 वाधका एण्ड प्रकाशन, नई दिल्ली

लोक अपकार है सफेद पोश अपराधों के अनेकों प्रवर्ग , सामाजिक और आर्थिक अपराध आदी भी इसी प्रकार के लोक अपकार है आज का उपगमन अपराध की परिभाषा पर न जाकर समाज पर पड़ने वाले उसके प्रभाव और उसके कल्याणकारी प्रभाव का आंकलन कर रहा है। इंग्लैण्ड में सन् 1958 ई. में प्रस्तुत की गई वोल्फेन्डेन कमेटी की रिर्पोट में यह स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया गया था कि ''इस प्रश्न पर मतभेद हो सकता है कि कौन सी बात सामान्यहित के विपरीत अथवा उसके लिये क्षतिकारी या वैर पूर्व है इसी प्रकार, इस बात पर भी मतभेद हो सकता है कि कौन सी बात शोषण अथवा भ्रष्टाचार की संरचना करती है। परन्तु इस संन्दर्भ में धारण किया गया अभिमत सदैव किसी समय प्रचलित नैतिक , सामाजिक, अथवा सांस्कृतिक मानकी पर आधारित होता है।''[23]

सामाजिक दृष्टि कोण से अपराध की व्याख्या

समाजशास्त्र में अपराध और अपराधी का एक अलग ही दृष्टिकोण से अध्ययन किया जाता है समाज-शास्त्रीय दृष्टि से अपराध वह कार्य है जो सामाजिक आदर्शों के विपरीत होता है। वह व्यवहार जो समाज विरोधी है अपराध है। आपराधिक आचरण एक ऐसा आचरण है जो दण्ड विधि द्वारा वर्जित है। किसी का आचरण कितना ही अनैतिक , अभद्र और अनुयोज्य क्यों न हो वह तब तक अपराध नहीं है जब तक कि दण्ड विधि द्वारा वह वर्जित नहीं है यह कहना कि अगर दण्ड विधि न रहे तो अपराध ही न रहे , और इसलिये दण्ड विधि को समाप्त कर देना चाहिए जिससे अपराध भी समाप्त हो जाय। मात्र एक शब्द विवाद है। किसी अपराध कार्य को दण्ड विधि से निकाल देने मात्र से उस कार्य की अपराधिक प्रकृति में कोई परिवर्तन नहीं आ सकता। वह कार्य अपराध जैसा ही रहेगा, अन्तर केवल इतना पडेगा कि दण्ड विधि द्वारा उस कार्य को अपराध परिभाषित करने पर वह राज्य द्वारा दण्डनीय होता, लेकिन दण्ड विधि से निकाल

---

[23] डॉ. मुरलीधर चतुर्वेदी (2007), ''अपराध शास्त्र एवं दण्ड शास्त्र'', लॉ एजेन्सी पब्लिकेशन इलाहाबाद, पृ.सं. 12-13.

देने पर वह कार्य समाज द्वारा दण्डित होने लगेगा। समाज स्वयं विधि अपने हाथ में ले लेगा और अपराधी को दण्डित करना प्रारम्भ कर देगा।

क्लिनार्ड ने अपनी व्यापक परिभाषा में सामाजिक नियमों के उल्लंघन को अपराध की संज्ञा दी है।

काल्डवैल ने लिखा है कि अपराध उन मूल्यों के संग्रह का उल्लंघन है जो एक निश्चित स्थान पर किसी समय-विशेष में एक संगठित समाज को मान्य होते है।

मोरर के अनुसार भी एक समाज विरोधी कार्य को ही अपराध कहा जाना चाहिए। स्पष्ट है कि यह अपराध का कानूनी दृष्टिकोण न्यायपालिका द्वारा दोष-प्रमाण और दण्ड पर बल देता है वहाँ सामाजिक दृष्टिकोण में यह आवश्यक नहीं है। समाज-शास्त्रीय दृष्टि से वे सभी कार्य और व्यवहार अपराध कहे जाते है जो सामाजिक आदर्शों, नियमों और आचरणों के विपरीत होते है। कभी-कभी कुछ ऐसे भी अपराध होते है जिनका कानून से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। जैसे कि मन्हाइम ने लिखा है -

अपराध कानून से सम्बन्धित हो, यह अनिवार्य नहीं, कानून के न होते हुए भी कुछ समाज-विरोधी कार्य अपराध कहे जाते हैं। मन्हाइम का मत है कि मानवीय आचरण का वह कोई भी रूप जो समाज विरोधी नहीं है अपराध नहीं कहा जा सकता है।[24]

गारोफेलों ने प्राकृतिक अपराध के सिद्धान्त का विकास करते हुये अपराध को सामाजिकता की परिभाषा प्रदान की है। उनके अनुसार करूणा तथा न्यायिकता की प्रचलित भावना का उल्लंघन अपराध है।[25]

---

[24] डॉ. एम.एम. लवानिया (1983), अपराध और अपराधी व्यवहार का समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, रिसर्च, दिल्ली, पृ.सं. 4.

[25] डॉ. मुरलीधर चतुर्वेदी (2007), ''अपराध शास्त्र एवं दण्ड शास्त्र'', लॉ एजेन्सी पब्लिकेशन इलाहाबाद, पृ.सं. 12-13.

रैडक्लिफ ब्राउन ने अपराध की प्रथाओं के उल्लंघन कार्य की संज्ञा दी , है जिनके निमित दण्डात्मक अनुशास्ति के प्रयोग की आवश्यकता पड़ती है।[26]

थामस ने सामाजिक मनोविज्ञान के दृष्टिकोण से अपराध को परिभाषित करते हुये कहा है कि यह एक ऐसा कार्य है जो किसी ऐसे वर्ग की सामाजिकता के प्रतिकूल हो जिसे व्यक्ति अपना समझते है।[27]

अपराध के सम्बन्ध में हाल का मत काफी तर्क सम्मत है। हाल ने अपराध के कुछ भेदक लक्षण बतलाते हुए कहा है कि हमें किसी भी व्यवहार को अपराध नहीं मानना चाहिए जब तक उसमें ये पांच मुख्य लक्षण न हों , (1) हानिप्रद कार्य, (2) इच्छानुरूप अथवा संकल्पित कार्य , (3) कानूनी प्रतिबन्ध, (4) अपराधी उदेश्यों एवं (5) कानून द्वारा निर्धारित दण्ड। स्पष्ट है कि इन भेदक लक्षणों के आधार पर अपराध की यह व्यापक परिभाषा की जा सकती है। अपराध वह ऐच्छिक कार्य है जो सामाजिक हितों के लिए हानिकारक है जिनमें अपराधी उदेश्य है, जो कानूनी दृष्टि से प्रतिबन्धित है तथा जिसके लिए कानून दण्ड निर्धारित करता है।''

वेब्स्टर के अनुसार अपराध शास्त्र एक विज्ञान के रूप में सामाजिक पृष्ठभूमि में अपराधियों का एवम् उनके मस्तिष्क सम्बन्धी गुणों , आदतों एवं उनके अनुशासन का अध्ययन करता है।

जी. डब्लू. क्रिचवी के अनुसार अपराध शास्त्र एक आधुनिक शब्द है जिसकों अपराधी आचरण के वैयक्तिक अथवा सामाजिक कारकों को मालूम करने के लिए किए गए अध्ययन निष्कर्षों के लिए प्रयोग किया गया , लेकिन जिसके अन्तर्गत किन्ही आधुनिकतम प्रवर्तकों , ने मानव समाज में अपराध तथा इसके उपचार की समस्त समस्याओं को सम्मिलित कर लिया।''

---

[26] वही।

[27] डॉ. मुरलीधर चतुर्वेदी (2007), ''अपराध शास्त्र एवं दण्ड शास्त्र'', लॉ एजेन्सी पब्लिकेशन इलाहाबाद, पृ.सं. 12-13.

सदर लैण्ड के अनुसार ''एक मूल्य जो एक समूह द्वारा अथवा उस समूह के राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण अंग द्वारा मान्यता प्राप्त है , समूह के दूसरे भाग का उससे पृथक होना अथवा सांस्कृतिक संघर्ष होना जिससे कि इस पृथक भाग के सदस्य उस मुल्य की सराहना नहीं करते या बहुत कम सराहना करते है तथा परिणाम स्वरूप उस मूल्य को खतरा पहुँचाने की और झुकते है फिर उस अंग के द्वारा जो उस मूल्य की सराहना करता है उस अंग के लिए एक प्रभावपूर्ण दबाव की व्यवस्था जो उसकी सराहना नहीं करता। इस प्रकार अपराध व्यक्ति के स्थान पर समूह या समाज की दृष्टि से देखा जाता है। जो इन्हीं उपर्युक्त सम्बन्धों का एक जाल मालूम पड़ता है।''

इलियर और मेरिल के अनुसार ''जब किसी व्यक्ति को असमाजिक ठहराया जाता है तो उसका आचरण उस मान्य आचरण से , जो समूह के द्वारा उस स्थिति में निश्चित होता है, भिन्न होता है।

सेधना के अनुसार ''अपराध शास्त्र का अर्थ अपराध व उसमें सम्बन्धित कारकों का अध्ययन है तथा अपराध के नाम पर चलने वाली चीज के कारणों एवं उपचारों का एक विश्लेषण है।''

गैरोफेलों के अनुसार दया और ईमानदारी की प्रचलित भावनाओं का उल्लंघन ही अपराध है।''

थामस के अनुसार ''अपराध एक ऐसा कार्य है जो उस समूह के स्थायित्व का विरोधी है जिसे कि व्यक्ति अपना समझता है।''

डी. आर. टफट के अनुसार ''अपराध शास्त्र वह अध्ययन है जिसकी विषयवस्तु के अन्तर्गत अपराध का अर्थ और निरोध तथा अपराधियों और बाल-अपराधियों के दण्ड और उपचार को सम्मिलित किया जा सकता है।[28]

---

[28] डॉ. एम.एम. लवानिया (1983), अपराध और अपराधी व्यवहार का समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, रिसर्च, दिल्ली, पृ.सं. 4.

यह स्मरणीय है कि अपराध समय-समय पर स्थानानुसार परिवर्तित होता रहता है। दूसरे शब्दों में अपराध को प्रक्रिया तो सार्वभौमिक है परन्तु इसकी परिभाषा सार्वभौमिक नहीं है। यह स्थान और समय के साथ-साथ बदलती रहती है। उदाहरणार्थ जो भारत में दण्डनीय अपराध है अथवा एक स्थान पर सामाजिक त्रुटि है, वह दूसरे स्थान पर केवल एक सार्वजनिक अशिष्टता ही हो सकती है। पर पुरूष अथवा पर स्त्री गमन इसका उदाहरण है-

अपराध प्रत्येक समाज में प्रत्येक समय उपस्थिति रहने वाली प्रक्रिया है समाज में जितनी जटिलता बढेगी , व्यक्ति का सामाजिक प्रतिमानों से अनुकुलन करना उतना ही कठिन होगा और फलस्वरूप अपराधियों की उतनी ही अधिक वृद्धि होगी। सभी परिभाषा में अपराध-शास्त्र को तीन मुख्य भागों में विभाजित करती है।

(अ) नियम का समाज शास्त्र- इसमें उन परिस्थितियों का अध्ययन करते है जो अपराधी नियमों को जन्म देती है।

(ब) अपराधी कारणों का शास्त्र- इसमें वैज्ञानिक पद्धति से अपराध सम्बन्धी कारणों की विवेचना की जाती है।

(स) दण्ड शास्त्र - यह निरोधात्मक है किन्तु सुधार एवं चिकित्सा का भी कार्य करता है।

अपराध के आवश्यक तत्त्व

अपराध की व्याख्या विभिन्न दृष्टिकोण से की गई है और सब व्याख्याएँ एक ही विशेष अर्थ की ओर संकेत करती है कि समाज और कानून के विरूद्ध किया जाने वाला व्यवहार ही ''अपराध है। अपराध के कुछ तत्त्व होते है और इन्हीं के आधार पर हम यह निष्कर्ष निकालते है कि कौनसी मानवीय क्रियाएँ अपराध है। हाल ने अपराध की निम्नलिखित तत्त्वों को गिनाया है।

(1) बाह्य परिणाम

इसका अभिप्राय यह है कि अपराध से किसी न किसी प्रकार की हानि अवश्य होनी चाहिए यह हानि व्यक्तिगत , सामूहिक, शारीरिक या मानसिक किसी भी प्रकार की हो सकती है। यदि किसी मानवीय क्रिया से व्यक्ति या समाज को कोई नुकसान न हो तो उसे हम अपराध नहीं कह सकते। सदरलैण्ड ने लिखा भी है। ''अपराध हानिकारक क्रिया है केवल मानसिक या भावात्मक क्रिया ही पर्याप्त नहीं है।''

(2) कानून द्वारा निषिद्ध

अपराधी व्यवहार से समाज को हानि होती है लेकिन यह व्यवहार तब तक अपराध की सीमा में नहीं आता जब तक कि वह कानुन के द्वारा वर्जित या निषिद्ध न हो। सदरलैण्ड ने लिखा है ''समाज विरोधी व्यवहार को तब तक अपराध नहीं कहा जा सकता जब तक कि वह कानून द्वारा निषिद्ध न हो। गिलिन और गिलिन के अनुसार भी किसी भी देश के कानून के विरूद्ध किया गया कार्य ही अपराध है भारत में सती प्रथा एक अमानवीय कार्य था समाज के घृणित रूप का नग्न प्रदर्शन था लेकिन वह तब तक अपराध नहीं था जब तक कि कानून द्वारा सती प्रथा को निषिद्व नहीं ठहरा दिया गया। यदि किसी देश में मद्यपान पर प्रतिबन्ध नहीं है तो यह मानवीय क्रिया अपराध नहीं कहलाएगी , लेकिन जहां मध निषेद्ध है वहां मद्यपान अपराध होगा। इसकी पुष्टि में ही सदरलैण्ड ने लिखा है। उस समाज विरोधी कार्य को अपराध नहीं कहा जाता जिसे दण्ड न मिले।[29]

(3) क्रिया - क्रिया केवल विचार मात्र अपराध नहीं है अपराध के लिए ''क्रिया'' का होना अनिवार्य है और वह क्रिया भी होनी चाहिए जो समाज द्वारा निषिद्ध हो। एक व्यक्ति यदि चोरी का इरादा करता है लेकिन चोरी की क्रिया नहीं करता तो उसे अपराध नहीं कहा जाएगा। इसी प्रकार यदि कोई क्रिया दबाव में आकर की

---

[29] डॉ. एम.एम. लवानिया (1983), अपराध और अपराधी व्यवहार का समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, रिसर्च, दिल्ली, पृ.सं. 6.

जाती है तो अपराध नहीं है। उदाहरणार्थ यदि आत्म सुरक्षा के लिए , कोई व्यक्ति प्रहार करता है और ऐसे करने में किसी व्यक्ति की मृत्यू हो जाती है या वह गम्भीर रूप से घायल हो जाता है तो इसे अपराध नहीं माना जा सकता है। आत्म-सुरक्षा के लिए बाध्य होकर की गई क्रियाओं को अपराध की सीमा में नहीं माना जाता।

(4) अपराधी इरादा

किसी भी अपराध के निर्धारण में अपराधी इरादा या अपराधी नीयत एक महत्वपूर्ण तत्त्व है हमें नियत और प्रयोजन को एक दूसरे से अलग रखना चाहिए। अपराध में कोई प्रयोजन का कोई स्थान नहीं है। आपका प्रयोजन चाहे कितना ही ऊँचा रहा हो लेकिन यदि आपकी क्रिया कानून द्वारा वर्जित है तो उसे अपराध माना जाएगा। एक विधवा स्त्री अपने बच्चों को भूख से तड़पती नहीं देख पाती उसकी ममता सीमा रेखा को पार कर जाती है। और वह भूखें बच्चों का गला दबा देती है तो इसमें माँ का प्रयोजन तो बुरा नहीं है लेकिन उसकी नीयत समाज विरोधी है उसकी क्रिया कानून द्वारा वर्जित है और इसलिए गला दबाने का कार्य अपराध है।[30]

(5) व्यवहार तथा हानि में सह-सम्बन्ध

कानून द्वारा निषिद्ध या वर्जित हानि तथा व्यक्ति के व्यवहार में अन्तः सम्बन्ध होना चाहिए, दोनों को एक दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता। हत्या अपराध है, किन्तु जब तक हत्यारे पर अपराध सिद्ध नहीं हो जाता तो यह अपराध की सीमा में नहीं आता। चोरी करना कानून द्वारा वर्जित है और इसमें समाज को हानि भी हुई है लेकिन जब तक चोर का पता नहीं चलता तब तक अपराध का निर्धारण नहीं हो सकता।

---

[30] डॉ. एम.एम. लवानिया (1983), अपराध और अपराधी व्यवहार का समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, रिसर्च, दिल्ली, पृ.सं. 4.

(6) नीयत तथा व्यवहार में सह-सम्बन्ध

अपराध के लिए जरूरी है कि अपराधी इरादा और उस इरादे का बाह्य प्रकाशन साथ-साथ हो। यदि ऐसा नहीं है तो अपराध का प्रश्न नहीं उठता। केवल इसके इरादे को ही अपराध नहीं कहा जा सकता।

(7) दण्ड

कोई क्रिया अपराध तभी है जब वह निश्चित रूप से दण्डनीय हो। हमें त़ीन शब्दों पर ध्यान देना होगा-अपराध , अपराधी, और अभियुक्त। अभियुक्त वह व्यक्ति हैं जिस पर न्यायालय में मुकदमा चल रहा है। यदि फैसले में अभियुक्त को अपराध से मुक्त कर दिया जाता है तो उसे किसी प्रकार दण्ड नहीं मिलता और उसका कार्य अपराध की सीमा में नहीं आता। दण्ड का प्रश्न तब पैदा होता है जब अभियुक्त को अपराधी करार दे दिया जाता है यह दण्ड किसी भी प्रकार का हो सकता है।[31]

दण्ड विधि का उदेश्य यह होता है कि वह अपराधियों को अपराध करने से परे रखे एवं लोगों को विधि का पालन करने हेतु प्रेरित करे उपर्युक्त विधिशास्त्रियों तथा अपराध शास्त्रियों द्वारा दी गई अपराध की परिभाषाओं के निष्कर्ष से किसी कार्य या कार्य लोप को अपराध माना जाने हेतु निम्नलिखित तत्त्वों का होना आवश्यक है।[32]

(1) विधि द्वारा विशिष्ट कार्य करने के लिए आबद्ध व्यक्ति।

(2) व्यक्ति की आपराधिक मन स्थिति

(3) मनः स्थिति को अग्रसर करने में कार्य अथवा कार्य का विलोप।

(4) कार्य अथवा कार्य के विलोप द्वारा अन्य व्यक्ति अथवा समाज को क्षति।

---

31 डॉ. एम.एम. लवानिया (1983), अपराध और अपराधी व्यवहार का समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, रिसर्च, दिल्ली, पृ.सं. 4.

32 रतनलाल तथा धीरजलाल, (2010), भारतीय दण्ड संहिता, 1860, publisher – lexisnexis Butterworths wadhwa Nagpur.

(5) विधि द्वारा' विशिष्ट कार्य करने के लिए आबद्ध व्यक्ति- प्राचीन काल में ऐसे कई उदाहरण मिलते है कि पशुओं को दण्डित किया जाता था।

समाज बदले की प्रबल भावना से प्रभावित था। यदि पशु के कार्य से किसी को क्षति पहुँचती थी तो वास्तविक न्यायिक परीक्षण तथा न्यायिक निर्णय के पश्चात उसे दण्ड के लिए उत्तरदायी होना पड़ता था, ऐसे उदाहरण है कि यदि सॉप या सुअर द्वारा किसी मनुष्य को क्षति पहुँचायी जाती थी तो उसे दण्ड स्वरूप जला दिया जाता था तथा सांड को पत्थरों से मार-मार कर मार डाला जाता था तथा पागल कुत्तों को मनुष्य की वेष-भूषा पहनाकर दण्ड दिया जाता था। इस तरह का न्यायिक परीक्षण और दण्ड मध्य युग में प्रचलित था। कभी-कभी पशुओं को साक्षी के रूप में भी स्वीकार किया जाता था। न केवल पशुओं किन्तु कीड़े मकोड़ों तथा निर्जीव वस्तुओं जैस- पत्थर , लोहे, और लकड़ी के टुकड़ों को भी दण्ड दिया जाता था। दण्ड इन वस्तुओं को सीमा के पार फैंककर दिया जाता था। आग्ल विधि में इसको डेव दण्ड कहते थे। यह सिद्धान्त इंग्लैण्ड में 1846 तक प्रचलित रहा। भारत वर्ष में पशुओं का न्यायिक परीक्षण मान्य नहीं था क्योंकि भारतीय विधि विद्वान आपराधिक मनः स्थिति के सिद्धान्त को भली-भाँति समझते थे।

आपराधिक मनः स्थिति के सिद्धान्त के विकास से यूरोपीय देशों में भी पशुओं का न्यायिक परीक्षण समाप्त हो गया। आधुनिक विधि शास्त्र के अनुसार आपराधिक कृत्य ऐसे व्यक्ति द्वारा होना चाहिए जिसकों दण्ड दिया जा सके। इन दिनों निगम को भी दण्डित किया जाता है किन्तु निगम को कारावासित नहीं किया जा सकता था। उनके लिए अर्थदण्ड ही सम्भव है।[33]

(2) व्यक्ति की आपराधिक मनः स्थिति

व्यक्ति को कार्य करने के लिए तब दण्डित किया जाता है जब उसका आशय संदोष हो। अपराध विधि का एक प्रसिद्ध सूत्र इस प्रकार है -

---

[33] डॉ. एस. एस. श्रीवास्तव भारतीय दण्ड संहिता युनिवर्सिटी बुक हाउस (प्रा.) , लि. जयपुर, 2003, पृ. 9.

ऐक्टस नान फैसिट रियम निसी मेंससिट रिया, जिसका तात्पर्य है कि कोई कार्य करने पर व्यक्ति तब तक दोषी नहीं होता जब तक उसका आशय भी उसी प्रकार का न हो। ''एक अन्य सूत्र इस प्रकार है ''ऐक्टस मी इनवाइटी फैक्टस नान एस्ट मेन्स ऐक्टस' जिसका तात्पर्य है 'मेरी इच्छा के प्रतिकूल मेरे द्वारा ही किया गया कार्य मेरा कार्य नहीं है। आपराधिक मनः स्थिति अथवा सदोष आशय की अनुपस्थिति में आपराधिक उत्तरदायित्व नहीं होता है क्योंकि कार्य विवशता , उन्मŸाता, मŸाता, आवश्यकता, दुर्घटना, सद्भाव व सम्मिन्तयुक्त अथवा शरीर या सम्पत्ति की प्रतिरक्षा आदि से किया जा सकता है।

(3) मनः स्थिति को अग्रसर करने में कार्य अथवा कार्य का विलोप

आपराधिक व सदोष कार्य एक भौतिक घटना होती है। यह मानव-आचरण का वह भौतिक परिणाम है जो कि पर्याप्त रूप से हानिप्रद होता है तथा इसी कारण दण्डनीय होता है भारतीय दण्ड संहिता की धारा-32 प्रावधानित करती है कि जब तक कि संदर्भ से तत्प्रतिकूल आशय प्रतीत न हो, इस संहिता के हर भाग में किए गए कार्यों का निर्देश करने वाले शब्दों का विस्तार अवैध लोपों पर भी है।[34]

(4) कार्य अथवा कार्य के विलोप द्वारा अन्य व्यक्ति अथवा समाज को क्षति।

अन्य व्यक्ति को क्षति तब होती है जब उसके शरीर मस्तिष्क , ख्याति, अथवा उसकी सम्प Ÿि◌ा को हानि पहुँचायी जाए। समाज को भी क्षति पहुँचायी जा सकती है। राज्य के विरूद्ध किए गए आपराधिक कार्य इसके उदाहरण है।

अपराध के क्षेत्र

अपराध शास्त्र एक सामाजिक विज्ञान है अतः सामाजिक विज्ञान के समान ही इसके क्षेत्र निर्धारण में कठिनाई है अपराध का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है और उसको निश्चित सीमा में बाँधना कठिन है फिर भी विद्वानों ने अन्य विषयों की भाँति अपराध शास्त्र का भी क्षेत्र निर्धारित करने का प्रयत्न किया है।

---

[34] रतनलाल तथा धीरजलाल, (2010), भारतीय दण्ड संहिता, 1860, publisher – lexisnexis Butterworths wadhwa Nagpur.

अपराध-शास्त्र के क्षेत्र को मोटे रूप में तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(1) कार्य-कारण

(2) सुधार एवं

(3) निवारण

काल्डवेल ने अपराध शास्त्र के चार क्षेत्र माने है जिन्हें डॉ. राम अहूजा ने इस प्रकार रखा है,

(1) अपराधी कानून की प्रकृति व प्रशासन तथा इसके विकास की परिस्थितियाँ,

(2) अपराध के कारणों एवं अपराधियों के व्यक्तिŸव का विश्लेषण

(3) अपराधियों का सुधार एवं पुनर्वास

(4) अपराध नियन्त्रण।

सदरलैण्ड ने निम्नलिखित तीन प्रक्रियाओं को अपराध-शास्त्र के क्षेत्र में सम्मिलित किया है।[35]

(1) कानून बनाने की प्रक्रियाएँ।

(2) कानून तोड़ने की प्रक्रियाएँ

(3) कानून तोड़ने से उत्पन्न प्रक्रियाएँ

सदरलैण्ड और ग्रेसे ने लिखा भी है कि यह पारस्परिक अन्तःक्रिया का अनुक्रम ही अपराधशास्त्र की विषय वस्तु है।

इलियट महोदय ने अपराध शास्त्र के चार प्रमुख तत्व बताये है जो अपराध का क्षेत्र निश्चित करते है।

---

[35] डॉ. एम.एम. लवानिया (1983), अपराध और अपराधी व्यवहार का समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, रिसर्च, दिल्ली, पृ.सं. 8.

(1) अपराध की प्रकृति

इसके अन्तर्गत विविध दृष्टिकोणों से अपराध की व्याख्यात की जाती है अपराध क्या है। प्रश्न का उत्तर भी दिया जाता है और अपराध के तत्त्वों एवं विशेषताओं को भी स्पष्ट किया जाता है।

(2) आपराधिक व्यवहार के कारण

इसे अपराध शास्त्र की कारण सम्बन्धी व्याख्या भी कहा जाता है। इसके अन्तर्गत अपराध के कारण एवं अपराध के उत्तरदायित्व का भी अध्ययन किया जाता है। इसके अन्तर्गत इस प्रश्न का उत्तर दिया जाता है कि 'अपराध' क्यों होते हैं।

(3) अपराधियों का वैयक्तिक अध्ययन

इसके अन्तर्गत अपराधी के व्यक्ति Ÿव का विश्लेषण किया जाता है और इस व्यक्तिŸव का सम्बन्ध अपराध के साथ स्थापित किया जाता है।

(4) अपराधियों का उपचार या दण्ड

अपराधशास्त्र का यह भी कार्य है कि अपराधियों को दण्डित किया जाय। इस दण्ड के दो उद्देश्य होते है।[36]

(अ) दण्ड के भय के कारण भविष्य में अपराध रोकना।

(ब) अपराधी का सुधार करना , रैंडजीनविच के अपराधशास्त्र का अध्ययन तीन शीर्षकों में बाँटा है।

(1) अपराधों के कारण

(2) आपराधिक नीति

(3) आपराधिक विधि

---

[36] डॉ. एम.एस. चौहान (2008), ''अपराधा शास्त्र एवं अपराधिक प्रशासन '', सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, इलाहबाद, पृ.सं. 4-5.

डॉ. राम आहूजा ने लिखा है कि ''कुछ अन्य समाज शास्त्री इस क्षेत्र को केवल विधि सम्मत व्यवहार तक ही सीमित रखने के पक्ष में नही हैं। समाज शास्त्रीय दृष्टि से अर्थपूर्ण व्यहार को भी , चाहे वह न्यायालय द्वारा दण्डित हो अथवा नहीं, अपराध-शास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत मानते है। किन्तु समाज-सम्मत व्यवहार के विरूद्ध मानव की क्रियाएँ अधिक है। और वे अपराध की परिभाषा से परे है। अतः ऐसी समस्त क्रियाओं का इस क्षेत्र में सम्मिलित होना अपराध-शास्त्र के अध्ययन को असम्भव बना देगा।'' [37]

अपराध-शास्त्र के सैद्धान्तिक ज्ञान का विकास विधि , धर्म, प्राकृतिक विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान आदि विभिन्न क्षेत्रों से होता है। अतः अपराध शास्त्र के क्षेत्र में विधान सभाओं की प्रक्रियाएँ , कानून लागू करने वाली एजेंसीज, न्यायालय, शैक्षणिक संस्थाएँ, सुधारात्मक संस्थाएँ तथा शासकीय एवं अशासकीय संस्थाओं के कार्य सम्मिलित होते हैं।

---

[37] डॉ. एम.एम. लवानिया (1983), अपराध और अपराधी व्यवहार का समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, रिसर्च, दिल्ली, पृ.सं. 9.

(स) अपराधों का वर्गीकरण

अपराधों के वर्गीकरण का कार्य एवं लक्ष्य आसान नहीं है , जितना इसे समझा जाता है। लेखक इसे टेढ़ी खीर मानता है। कारण स्पष्ट है समय एवं काल के अनुसार न केवल अपराधी बदला है अपितु अपराध की तकनीक, तौर-तरीके एवं उसके स्वभाव में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है। पहले अपराध गिनती के थे। चोरी, लूट, डकैती, हत्या, बलात्कार, अपहरण, व्यपहरण आदि अपराधों का ही बोल बाला था। तस्करी, काला बाजारी, अपमिश्रण आदि। सफेद पोश ' अपराधों को कोई समझता ही नहीं था। यह कलियुग की या यों कह दिया जाये , इस युग की उपज है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। अपराधों के विकास की गति अभी रूकी नहीं है। गतिमान जीवन की तरह यह भी निरन्तर गतिशील एवं प्रगतिशील है। यही कारण है कि अपराधी के वर्गीकरण को लक्ष्मण रेखा में प्रतिबन्धित नहीं किया जा सकता।

''आँग्ल विधि के अन्तर्गत अपराधों को पहले दो भागों में वर्गीकृत किया जाता था (1) कॉमन लॉ के अपराध एवं (2) संविधिक विधि के अपराध

लेकिन कालान्तर में यह निम्नांकित तीन भागों में वर्गीकृत हो गया है

(1) अभिद्रोह

(2) महापराध

(3) उपापराध।

भारतीय विधि में अपराधों का ऐसा कोई वर्गीकरण नहीं किया गया है। हमारे यहां प्रक्रिया एवं प्रकृति के अनुसार अपराधों का उल्लेख मोटे रूप में भारतीय दण्ड संहिता एवं दण्ड प्रक्रिया संहिता में कर दिया गया है।[38]

---

[38] रतनलाल तथा धीरजलाल, (2001), भारतीय दण्ड संहिता, 1973, वाधवा एण्ड कम्पनी, विधि प्रकाशक आगरा।

दण्ड प्रक्रिया संहिता के अनुसार अपराधों का वर्गीकरण

प्रक्रिया के अनुसार अपराधों का वर्गीकरण निम्नानुसार किया जा सकता है-

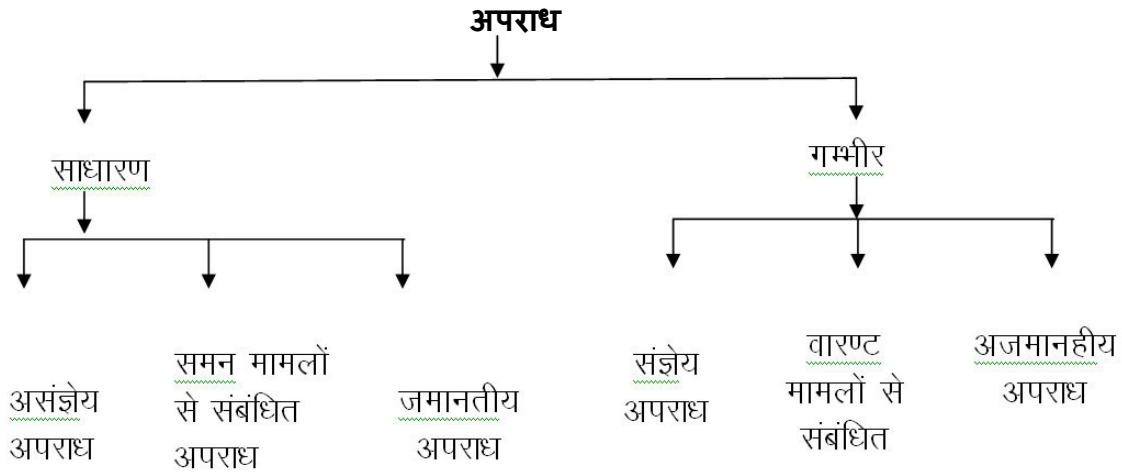

प्रक्रिया के आधार पर अपराधों का वर्गीकरण का संक्षेप में अध्ययन उचित प्रतीत होता है जौ निम्नानुसार है-[39]

(1) संज्ञेय अपराध - संज्ञेय अपराध से अभिप्राय ऐसे अपराध अभिप्रेरित है जिनमें पुलिस अधिकारी अभियुक्त को वारण्ट के बिना गिरफ्तर कर सकता है।[40] जिन अपराधों के लिए विशेष अधिकारियों को गिरफ्तारी का विशेष प्रावधिकार दिया गया है। वे संज्ञेय अपराध नहीं है , जैसे बाम्बे प्रिवेन्शन ऑफ गैम्बलिंग ऐक्ट की धारा 5 के अधीन अपराध संज्ञेय अपराध नहीं है।[41] इस धारा के अधीन संज्ञेय मामला बनने के लिए यह

---

39 डॉ. ना.वि. परांजपे (2010) सेन्ट्रल लॉ. एजेन्सी, इलाहाबाद, भारतीय दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973.

40 हाजी महमूद खान, 1942 केरल 941

41 हाजी महमूद खान, 1942 केरल 941

पर्याप्त होगा की अपराधों में एक या अधिक संज्ञेय है। यह संहिता किसी मामले को आंशिक असंज्ञेय होने का अनुध्यान नहीं करती है।[42]

(2) असंज्ञेय अपराध - असंज्ञेय अपराध से ऐसे अपराध से अभिप्रेरित है जिसमें पुलिस अधिकारी अभियुक्त को वारण्ट के बिना गिरफ्तार नहीं कर सकता है।

राम मनोहर बनाम उ Ÿार प्रदेश राज्य के वाद में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि किसी प्राइवेट व्यक्ति द्वारा असंज्ञेय अपराध के संदर्भ में दायर परिवाद असंज्ञेय अपराध के संदर्भ में पुलिस अधिकारी के समक्ष की गई रिपोर्ट के समान है। जहाँ अपराध का अन्वेषण पुलिस अधिकारी द्वारा मजिस्ट्रेट की अनुज्ञा से किया जाता है। वहाँ मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 256(1) के परन्तुक के अधीन परिवादी को निजी हाजिरी से अभिमुक्ति दे सकता है।[43]

किसी पुलिस आफिसर को मजिस्ट्रेट की पूर्व अनुमत के बिना किसी असंज्ञेय मामले का अन्वेषण करने के लिए अनुज्ञात नही किया जा सकता है और यदि वह ऐसा करता है तो असंज्ञेय अपराध प्रकट करने वाली उसके द्वारा प्रस्तुत की गई रिपोर्ट को परिवाद नही माना जा सकता है।[44]

(3) जमानतीय अपराध जमानतीय अपराध साधारणतया सामान्य प्रकृति के अपराध होते है। अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि जमानतीय अपराधों में ''जमानत अभियुक्त का अधिकार होता है।''

दण्ड प्रक्रिया संहिता , 1973 की धारा 2 (क) में जमानतीय अपराध की परिभाषा दी गई है। इसके अनुसार जमानतीय अपराध से अभिप्रेत ऐसे अपराध से है-

---

42 बाडलामुडी कुटुम्ब राव (1961) 2 हि एल जे 6051

43 बाडलामुडी कुटुम्ब राव (1961) 2 हि एल जे 6051

44 इल्लीस अली बनाम स्टेट आय डब्लू.बी., 1997 क्रिएल जे 803

(क) जो प्रथम अनुसूची में जमानीतय अपराध के रूप में दिखाया गया हो , या

(ख) जो तत्समय प्रवृत्त किसी विधि द्वारा जमानतीय बनाया गया हो , और

(ग) जो अजमानतीय अपराध से भिन्न कोई अपराध हो।

बीरेन्द्र बनाम राजस्थान राज्य[45] के वाद में यह विनिश्चित किया गया कि जब अभियुक्त को किसी जमानतीय अपराध के अभियोग की दशा में धारा 436 के अधीन जमानत पर छोड़ दिया जाता है और इसके बाद उसके विरूद्ध एक अजमानतीय अपराध और जोड़ दिया जाता है तो उक्त दशा में जारी की गई जमानत को निरस्त नहीं किया जा सकता है जमानत या तो धारा 439(2) या धारा 437(5) के अधीन ही रद्द की जा सकती है। राजस्थान राज्य बनाम बालचंद[46] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिमत प्रकट किया कि यद्यपि जमानत मंजूर करना या इन्कार करना यह न्यायालय के विवके का प्रश्न है, फिर भी यह नहीं भुलाया जाना चाहिए कि जब तक किसी विधि का स्पष्टतः उल्लंघन न किया गया हो , किसी व्यक्ति को उसकी स्वाधीनता से वंचित नहीं किया जाना चाहिए। यदि अपराधी के न्यायालयीन कार्यवाही से भाग जाने की संभावना न हो, तो उसकी जमानत मंजूर करने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए। चूंकि जमानत इन्कार करने के परिणाम स्वरूप व्यक्ति की वैयक्तिक स्वाधीनता निर्बंधित होती है जिससे अनुच्छेद 21 का उल्लंघन होता है। अतः केवल बिरले मामलों में ही जमानत नामंजूर की जानी चाहिए।[47]

जब अभियुक्त पुलिस द्वारा जमानत पर छोड़ दिया जाता है तो मजिस्ट्रेट को नए बंध-पत्र देने के लिए आदेश करने की अधिकारिता नहीं होती।[48]

(4) अजमानतीय अपराध

---

45 1988 राजस्थान क्रि. केसेज 431

46 ए.आई.आर. 1977 सु.को. 2447

47 बाबूसिंह बनाम् उ Ÿारप्रदेश राज्य ए.आइ्र.आर. 1978 सु.को. अफ्जल खान बनाम कर्नाटक राज्य, 1992 क्रि.लॉ.ज. 1676

48 मोहित मल्होत्रा बनाम स्टेट ऑफ राजस्थान, 1991 क्रि.एल.जे. 806 (राज.)

दण्ड प्रक्रिया संहिता , 1973 में अजमानतीय अपराध की परिभाषा नहीं दी गई है। अतः ऐसे अपराध जो जमानतीय नहीं हो, अजमानतीय मान लिये जाते है। ऐसे अपराधों में ''जमानत अभियुक्त का अधिकार नहीं होता है। '' यह न्यायालय की विवेकाधीन शक्तियों पर निर्भर करता है। अजमानतीय अपराध साधारणतया गम्भीर एवं संगीन प्रकृति के अपराध होते है।

उच्चतम न्यायालय ने दिल्ली राज्य बनाम जसपाल सिंह गिल के वाद में विनिश्चित किया कि अजमानतीय अपराधों के मामलों में विचारण प्रारम्भ करने से पूर्व अभियुक्त के जमानत के आवेदन पर विचार करते समय मजिस्ट्रेट/न्यायाधीश को अपराध की गम्भीरता तथा स्वरूप को ध्यान में रखना चाहिए तथा राज्य सरकार के व्यापक हित में होने पर ही जमानत मंजूर करनी चाहिये।[49]

पियारा सिंह बनाम पंजाब राज्य [50] के वाद में यह विनिश्चित किया गया कि यदि एक बार अभियुक्त के पक्ष में जमानत मंजूर की जाती है , तो यह किसी भी मजिस्ट्रेट या सेशन न्यायाधीश द्वारा निरस्त नहीं की जा सकती है जब तक कि धारा 437 (5) में विहित प्रक्रिया का पूर्णतः अनुपालन न कर लिया गया हो।

करण सिंह बनाम राजस्थान राज्य[51] के वाद में राजस्थान उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि जहाँ मामले में यह अभिकथन किया गया हो कि अभियुक्त जमानत पर छोड़े जाने के बाद विरोधी पक्ष के साक्षियों को धमकी दे रहा है तो ऐसा अभिकथन संदिग्धतापूर्ण होने की दशा में उच्च न्यायालय धारा 437(5) के अधिन अभियुक्त की जमानत रद्द किए जाने के बारे में विचार करने के लिए बाध्य नहीं होगा।

महाराष्ट्र राज्य बनाम् आनंद तिमण दिघे [52] के मामले में अभियुक्त को जमानत पर इस आधार छोड़ा गया था कि वह एक बड़े राजनैतिक संघ का नेता था और भविष्य में कोई अपराध कारित किये जाने की संभावना नहीं थी लेकिन

---

49 1984, 3 एस.सी.सी. 555

50 1980 चण्डी, लॉ.रि. 233 (पंजाब हरियाणा)

51 करण सिंह बनाम राजस्थान राज्य (1973) क्रि.लॉ.ज. 251 (राज.)

52 ए.आई.आर. 1990 सु.को. 625

यह अभियुक्त जमानत पर छूटने के पश्चात् बार-बार हत्या की धमकी देते हुए तथा हिंसा भड़काने वाले कथन करते हुए पाया गया। अतः उच्चतम न्यायालय ने उसकी जमानत को निरस्त किया जाना न्योयाचित माना।

(5) समन मामलों से संबंधित अपराध

समन मामलों से संबंधित अपराध से अभिप्राय ऐसे अपराध से है जिसमें अभियुक्त को दो वर्ष तक की अवधि का कारावास या जूर्माना या दोनों का दण्डादेश दिया जा सकता है।

दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 2 (ब) के अन्तर्गत ''समन मामले से अभिप्राय ऐसे मामले से है , जो किसी ऐसे अपराध से संबंधित होता है जो कि वारण्ट मामला नहीं है।[53]

समन मामले में विचारण का प्रारम्भ अभियुक्त व्यक्ति के अभिकथनों के अभिलेखन से होता है। [54] धारा 251 में यह बताया गया है कि समन मामले की दशा में जब अभियुक्त मजिस्टे ªट के समक्ष हाजिर हो या लाया जाए , तब उसे मजिस्टेªट द्वारा अपराध की विशिष्टओं से अवगत कराया जाएगा तथा उससे यह पूछा जाएगा कि क्या वह दोषी होने का अभिवाक् करता है या विचारण का दावा करता है। [55] समन मामले में जैसे की अभियुक्त मजिस्टे ªट उससे उसकी दोष सिद्धि के अभिवचन के बारे में पूछेगा। यह उपबंध आज्ञापक है जिसका अनुपालन मजिस्टेªट द्वारा प्रत्येक दशा में किया जाना अनिवार्य है।[56]

(6) वारण्ट मामलों से संबंधित अपराध

वारण्ट मामलों से संबंधित अपराध से अभिप्राय ऐसे अपराध से है जिसमें अभियुक्त को दो वर्ष से अधिक की अवधि का कारावास या आजीवन कारावास या मृत्युदण्ड दिया जा सकता है (धारा 2, दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973)[57]

---

53 धारा-2 (ब), भारतीय दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973.

54 एस. एन. भगवती बनाम प्रभाकर माधव राव जाम्बेकर, 1969 गोहाटी लॉ.रि. 84

55 एन. कान्दा स्वामी पिल्लई बनाम इक्जीक्यूटिव ऑफिसर पंचायत बोर्ड , ए.आई.आर. (1947), मद्रास 306

56 ओंकार बनाम् कपूर चन्द (1966) क्रि.लॉ.ज. 579

57 डॉ. ना.वि. पराजपे (2010), दण्ड प्रक्रिया संहिता-1973, संटेªल लॉ एजेन्सी इलाहाबाद।

जब वारन्ट मामले की प्रक्रिया अपनाने के स्थान पर समन मामले की प्रक्रिया अपना ली गई हो परन्तु कोई प्रतिकुल प्रभाव न पड़ा हो तो यह केवल एक अनियमिता होगी जो इस संहिता की धारा 465 के अधीन सुधारे जाने योग्य होगी।[58]

न्याय के हित में किसी समन मामले का विचारण वारन्ट मामले की तरह किया जा सकता है। उसी प्रकार वारन्ट मामले के रूप में विचारित किये जाने वाले मामले की कार्यवाही सुनवाई के बीच में समन मामले की भान्ति की जा सकती है, यदि न्याय यही अपेक्षा करता है तथापि मजिस्टे ªट को चाहिए की वह इस सम्बंध में विशिष्ट आदेश करे तथ आर्डर शीट से कार्यवाही में किए गए इस परिवर्तन का पता चलना चाहिए, यद्यपि लोप धारक नहीं होता है।[59]

वारन्ट मामले में समन मामले की विचारण की प्रक्रिया अपनाने पर अभियुक्त गवाहों से प्रति परीक्षा का अधिकार खो देता है और इस प्रकार वारन्ट मामले का समन मामले की तरह विचारण अवैध हो जाता है।[60]

विद्वान क्लिनार्ड और क्वीने ने अपराधी व्यवहार की पद्धतियों के आधार पर अपराधों का वर्गीकरण करने का प्रयत्न किया है जो निम्नलिखित आठ प्रकार के अपराध का वर्गीकरण किया है-

(1) हिंसात्मक व्यक्तिगत अपराध - हत्या, आक्रमण, बलात्कार

(2) सम्पत्ति संबंधी आकस्मिक अपराध - मोटरों या दुकानों से चोरी , कलात्मक वस्तुओं की चोरी, जाली चैक बनाना आदि।

(3) व्यावसायिक अपराध - गबन, कालाबाजारी, झुठे विज्ञापन आदि।

(4) राजनीतिक अपराध - देशद्रोह , जासूसी, शत्रु देशों को अपने देश के सैनिक रहस्य देना, गुप्त तोड़-फोड़ आदि।

---

58 प्रेमदास बनाम् स्टेट ए.आई.आर., 1961 इलाहाबाद 590 पूर्ण न्यायपीठ

59 किशोरी लाल बनाम महादेव, 1993 क्रि एल.जे. 1173 (इला.)

60 केशव बनाम स्टेट ए.आई.आर. 1969 पटना, 105.

(5) सार्वजनिक व्यवस्था संबंधी अपराध - मदिरापान , वेश्यावृति, समलिंगता, आवरागर्दी, उपद्रवी व्यवहार, यातायात के नियमों का उल्लंघन आदि।

(6) परम्परागत अपराध - डाकेजनी, लूटमार, गिरोह बनाकर, चोरी अपहरण आदि

(7) संगठित अपराध - संगठित जुआ, संगठित, वेश्यावृत्ति, दस्युता आदि।

(8) पेशेवार अपराध - दुकानों में चोरी, जेबकतरी, नकली सिक्के बनाना आदि।[61]

मनुष्य के व्यवहार में विविधता होने के कारण उस पर आधारित अपराधों में भी विविधता पाई जाती है। प्रकृति के आधार पर अपराधों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है -

(1) साधारण अपराध

(2) गम्भीर अपराध

विभिन्न अपराधों को उनकी गम्भीरता के अनुसार उपर्युक्त दो वर्गों में रखा जा सकता है। परन्तु अनेक विद्वानों ने अपराधों का वर्गीकरण पृथक्-पृथक् तत्त्वों को आधार मानकर करने का प्रयास किया है। प्रमुख वर्गीकरण निम्नलिखित हैं -

लेमर्ट ने अपराधों को निम्नलिखित तीन वर्गो में विभक्त किया हैं-

(1) स्थितिजन्य अपराध- इस वर्ग में वे अपराध आते हैं जो मनुष्य को परिस्थितियोंवश मजबूर होकर करने पड़ते हैं अथवा जिनके लिए परिस्थितियाँ ही पूर्ण रूप से उत्तरदायी हैं। इनके करने में मनुष्य की इच्छा अथवा अनिच्छा का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। उदाहरण के लिये योग्य और कुशल व्यक्ति को रोजगार न मिलने पर उसके द्वारा आत्महत्या का अपराध इसी वर्ग में आता है।

---

[61] डॉ. एम.एम. लवानिया (1983), अपराध और अपराधी व्यवहार का समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, रिसर्च, दिल्ली, पृ.सं. 50.

अभियुक्त ने अपने शिकार व्यक्ति के शरीर के नाजुक अंगो पर अनेकों गम्भीर चोटे कारित की जिससे उसकी मौके पर ही मृत्यु हो गयी , अभिनिर्धारित हुआ कि धारा 300 का अपवाद।[62]

उस व्यक्ति को इस अपवाद का लाभ नहीं दिया गया जिसने अपनी पत्नी की हत्या की थी प्रकोपन के किसी परिस्थिति के अधीन नहीं , चमडे की पेटी से गला घोंटकर और उसके बाद न्यायिकेत्तर संस्वीकृतियों की जिन्हें विश्वसनीय पाया गया। अभियुक्त पति को अपनी पत्नि की स्वामीभक्ति पर संदेह था उसने पति को निरादर पूर्ण शब्द कहे , आत्म-नियंत्रण खो बैठा उस पर पत्थर से हमला कर दिया मृत्यु धारा 300 के अपवाद-प् आकर्षित होता था , दोष सिद्धि को बदलकर धारा 304 भाग प्प् के अधीन कर दिया।[63]

(2) **नियोजित अपराध-** इस प्रकार के अपराध परिस्थितियों की देन नहीं होते अपितु सोच-विचार कर आश्यपूर्वक किये जाते हैं। इस प्रकार के अपराधों में दो तत्त्व उपस्थित रहते हैं-

(अ) व्यक्ति की अपराध करने की इच्छा , और

(ब) अपराध करने की पूर्वनियोजित विधि।

जैसे-जैसे मानव के ज्ञान में वृद्धि होती जा रही है , वैसे-वैसे ही नियोजित अपराधों की संख्या में वृद्धि होती जा रही है। ट्रेन-डकैती , बैंक-डकैती, योजनाबद्ध हत्याएँ जालसाजी साइबर क्राइम्स आदि नियोजित अपराधों के उदाहरण हैं।[64]

इस मामले में पति द्वारा पत्नी की हत्या में एक षडयंत्रकारी मौजूद था जिसने हत्या में मदद की थी और हत्या के तुरन्त बाद तीसरा षडयंत्रकारी भी पहुँच गया था और तीनों ने मिलकर शव का साक्ष्य मिटाने मे हाथ बंटाया था।[65]

---

62 के.एम. नानावटी बनाम महाराष्ट्र राज्य ब्ण्त्ण् 1962 CRLJ 261

63 स्टेट ऑफ कर्नाटक बनाम आर. वारा दराजु (1995) CRLJ 1429

64 डॉ. एम.एस. चौहान (2008), ''अपराधा शास्त्र एवं अपराधिक प्रशासन '', सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, इलाहबाद, पृ.सं. 16.

65 एस.सी. बहरी बनाम स्टेट ऑफ बिहार AIR 1994 SC 2020

दर्शनसिंह बनाम स्टेट ऑफ पंजाब AIR 1983 SC 554 में उच्चतम न्यायालय ने इसे अविश्वसनीय समझा कि अभियुक्तों ने शराब पीते समय एक अपरिचित की मौजूदगी में अपना षडयंत्र रचा था। षडयंत्र के प्रभाव के लिए बहुधा यह आवश्यक हो जाता है कि षडयंत्रकारियों में एक को इकबाली साक्षी बना लिया जाए है कि इसके लिए सम्पुष्टि की आवश्यकता पड़ सकती है।

षडयंत्रकारियों की किसी एक मिटिंग मे एक षडयंत्रकारी की अनुपस्थिति की उसकी सह आपराधिकता को समाप्त नहीं कर देगी। षडयंत्र गुप्तता की आड में रचे जाते है। साधारणतया उन्हे परिस्थिति साक्ष्य से साबित किया जाता है।[66]

इ.के. चन्द्रासेनान बनाम स्टेट ऑफ केरल AIR 1995 SC 1066 के वाद में तीन लोगों का षडयंत्र जिनमें से एक ने हस्ताक्षर कुटरचित किये और तीसरे ने साक्ष्यों को भुनाने के लिए फर्जी नाम से खाते खोले उनमे से सभी को अपराध का दोषी समान रूप से माना गया।[67]

(3) विश्वासघातक अपराध- इस प्रकार के अपराध विश्वास भंग पर आधारित हैं तथा इनमें धोखा का तत्त्व प्रमुख होता है। इस प्रकार के अपराधों के लिये अपराधी को अपराध करने से पूर्व उस व्यक्ति का विश्वास प्राप्त होना चाहिये , जिसके विरूद्ध अपराध किया जाता है।

मात्र संविदा भंग और छल के अपराध में जो सुभिन्नता है वह बहुत सुक्ष्म है। यह अभियुक्त के उत्प्रेरण करने के समय को आशय पर निर्भर करती है जिसके बारे में अनुमान उसके पश्चात्वर्ती आचरण से किया जाता है परन्तु उसके लिए पश्चातवर्ती आचरण ही एक मात्र कसौटी नहीं है। मात्र संविदा भंग ही भारतीय दण्ड संहिता की धारा 420 के अधीन अपराधिक अभियोजन को जन्म नहीं दे सकता जब तक की कपटपूर्वक या बेईमानी का आशय संव्यवहार के ठीक

---

66 बलवंत कंवर बनाम यु.टी. चण्डीगढ़ 1988 CRLJ 398

67 इ.के. चन्द्रासेनान बनाम स्टेट ऑफ केरल AIR 1995 SC 1066

आरम्भ में ही दर्शित न किया गया हो क्योंकि वही ऐसा समय होता है जब यह कहा जा सकता है कि अपराध किया गया है।[68]

एक पक्ष की ओर से आरोप लगाए गए कि संविदा के अन्तर्गत कोई भुगतान नहीं किया गया था। दूसरे पक्ष का कहना था कि समय- समय पर आंशिक भुगतान किया गया है किन्तु शेष रकम इसलिए रोक ली गई थी क्योंकि कार्य घटिया किस्म का था और इस बारे में एक पत्र भी जारी किया गया था न्यायालय ने कहा कि विवाद पूर्णतया सिविल प्रकृति का था आपराधिक आशय की कमी थी और ठेकेदार को बेईमानी से ठगने का इरादा प्रारम्भ से ही नहीं था अतः संज्ञेयता ग्रहण करने के आदेश को मंसूख कर दिया गया था।[69]

हरि मांझी बनाम स्टेट 1990 त्स्श्र 650 में अभियुक्त ने एक लड़की से और उसके माता-पिता से विवाह का वचन दिया था और उसके बाद उसने उससे एक वर्ष से भी अधिक समय तक लिंगीय धनिष्ठता बनाये रखी , गाँव पंचायत के समक्ष उस तथ्य और गर्भधारण की संस्वीकृति की परन्तु किसी अन्य लड़की से विवाह करने चला गया। यह अभिनिर्धारित हुआ कि , छल का अपराध साबित नही होता था। इस बात के लिए ऐसे सबूत की आवश्यकता थी कि वचन देने के समय विवाह न करने का उसका कपटपूर्ण आशय था ऐसा सबूत विधमान नहीं था।[70]

बांगर - बोंगर ने अपराधों का वर्गीकरण उनके प्रयोजन के आधार पर किया है। उनके अनुसार अपराध चार प्रकार के होते हैं -

(1) आर्थिक अपराध

(2) यौन-सम्बन्धी अपराध

(3) राजनैतिक अपराध

(4) विविध अपराध

---

68 K. Periasami 1985 CRLJ 1721 (Madras)

69 गौतम सिंह बनाम स्टेट 2003

70 हरि मांझी बनाम स्टेट 1990 CRLJ 650 Calcutta

हैज- हैज ने अपराधों के वर्गीकरण के लिये दो बातों को आधार माना है-

(1) अपराधी का उद्देश्य, और

(2) अपराध की प्रेरक शक्तियाँ।

वास्तव में अपराध इन्ही दो तत्त्वों का उत्पादन है। हेज के अनुसार अपराध तीन प्रकार के होते हैं -

(1) व्यक्ति के विरूद्ध

(2) सम्पत्ति के विरूद्ध अपराध

(3) व्यवस्था के विरूद्ध अपराध

सदरलैण्ड - सदरलैण्ड ने अपराधों को दो भागों में बाँटा है-

(1) साधारण अपराध

(2) श्वेतपोश अपराध

श्वेतपोश अपराध वे अपराध हैं जो उच्च प्रतिष्ठा-प्राप्त (श्वेतपोश) लोगों द्वारा अपने व्यापार से सम्बन्धित क्षेत्र में आर्थिक लाभ के लिये किये जाते हैं।[71]

सांख्यिकीय आधार पर अपराधों का वर्गीकरण[72]

अपराधों की संख्या के आधार पर सरकार ने अपराधों का वर्गीकरण मुख्य रूप से व्यक्ति, सम्पत्ति और राज्य को आधार मान कर किया है। इस वर्गीकरण के अनुसार अपराध को पाँच भागों में बाँटा जा सकता है -

(1) व्यक्ति के विरूद्ध अपराध

(2) सम्पत्ति के विरूद्ध अपराध

(3) राज्य के विरूद्ध अपराध

---

71 डॉ. एम.एस. चौहान (2008), ''अपराधा शास्त्र एवं अपराधिक प्रशासन '', सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, इलाहबाद, पृ.सं. 16.

72 वही, पृ.सं. 17.

(4) व्यवस्था के विरूद्ध अपराध

(5) न्याय के विरूद्ध अपराध

भारतीय दण्ड संहिता के अनुसार

भारतीय दण्ड संहिता में अपराधों का वर्गीकरण सांख्यिकीय आधार पर ही किया गया है। यह वर्गीकरण अपेक्षाकृत व्यापक एवं उपयुक्त है , जिसमें सभी प्रकार के अपराधों को उचित रूप से रखा जा सकता है। भारतीय दण्ड संहिता में अपराधों को सुविधा की दृष्टि से निम्नलिखित सात भागों में विभक्त किया गया है - (1) मानव शरीर के विरूद्ध अपराध , (2) संपत्ति के विरूद्ध अपराध , (3) लेखसम्बन्धी अपराध, (4) मस्तिष्क को प्रभावित करने वाले अपराध, (5) लोक शांति के विरूद्ध अपराध, (6) राज्य के विरूद्ध अपराध और (7) शासकीय सेवकों द्वारा अपराध।[73]

(1) मानव शरीर के विरूद्ध अपराध

मानव शरीर को प्रभावित करने वाले निम्नलिखित अपराध हैं-

(1) गैर कानूनी मानव-हत्या - एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य की मृत्यु कारित करना ही मानव हत्या है। यदि किसी मनुष्य की मृत्यु विधि के प्रावधानों के अन्तर्गत पारित आदेश के निष्पादन में सक्षम अधिकारी द्वारा की जाय या किसी दुर्घटना के कारण किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाय जिसके लिये किसी व्यक्ति को दोषी न ठहराया जाय तो यह हत्या नहीं कही जायगी और किसी भी हालत में उस अपराध नहीं माना जा सकता है। हत्या दो प्रकार से हो सकती है -

(अ) आशयपूर्वक हत्या करने की नीयत से ,

(ब) उदासीनता के कारण।

भारत दण्ड संहिता में हत्या को तीन भागों में बाँटा गया है -

(अ) हत्या

---

[73] भारतीय दण्ड संहिता, 1860.

(ब) सदोष मानव-वध

(स) उपेक्षित या हठीली क्रिया द्वारा हत्या।

(2) आत्महत्या - किसी व्यक्ति द्वारा स्वयं की मृत्यु कारित करने को आत्महत्या कहा जाता है।

(3) गर्भपात - शिशु को भ्रूणावस्था में गर्भ से गिरा देना या ऐसी ही क्रियाएँ भारतीय दण्ड सहिता में अपराध मानी गई है। माँ के स्वास्थ्य की रक्षा के लिये अथवा परिवार-नियोजन के लिय भ्रूण को प्रारम्भिक अवस्था में मान्य चिकित्सक द्वारा निकलवा देना, अब अपराध नहीं है।[74]

(4) शिशु-परित्याग और शिशुजन्म को छिपाना

(5) चोट - चोट दो प्रकार की हो सकती है-

(1) साधारण चोट और

(2) गम्भीर चोट ।

गम्भीर चोट के अन्तर्गत निम्नलिखित चोट सम्मिलित की जाती है -

(अ) अवैधानिक बन्धायकरण।

(ब) दोनों या एक आँख की ज्योति स्थायी रूप से नष्ट करना।

(स) दोनों कानों अथवा एक कान की श्रवण-शक्ति स्थायी या अस्थायी तौर पर नष्ट कर देना।

(द) शरीर के किसी अवयव (अंग) को अलग कर देना।

(य) शरीर के किसी अंग की शक्ति नष्ट कर देना।

(र) किसी के सिर या चेहरे को कुरूप कर देना।

(ल) दाँत या शरीर की कोई हड्डी तोड़ देना या जोड़ हटा देना।

---

[74] डॉ. एम.एस. चौहान (2008), ''अपराधा शास्त्र एवं अपराधिक प्रशासन '', सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, इलाहबाद, पृ.सं. 17.

(व) कोई भी ऐसी चोट जिससे जीवन को खतरा हो अथवा असह्य पीड़ा हो या जीवन को संचालित करने में कठिनाई हो।

(6) सदोष अवरोध- किसी भी व्यक्ति को वहां जाने से बलपूर्वक रोकना जहां जाना उसका अधिकार है, सदोष अवरोध कहलाता है।

(7) सदोष परिरोध- किसी व्यक्ति को चहारदीवारी के अन्दर बलपूर्वक रोके रखना सदोष परिरोध कहलाता है।

(8) आपराधिक बल-प्रयोग - यह वह क्रिया है जिसके द्वारा किसी व्यक्ति की गति या गति परिवर्तन में बाधा डाली जाय या गति या गति परिवर्तन के लिये उसे विवश किया जाय।

(9) आक्रमण

(10) व्यपहरण

(11) अपहरण

(12) बलात्कार

(13) अप्राकृतिक अपराध

(2) सम्पत्ति के विरूद्ध अपराध- भारतीय दण्ड संहिता में सम्पत्ति के विरूद्ध निम्नलिखित अपराध रखे गये हैं -

(i) चोरी - किसी व्यक्ति की चल सम्पत्ति को बिना उस व्यक्ति की आज्ञा के उसके अधिकार क्षेत्र में बेईमानी की नीयत से , बाहर करना चोरी है।

(ii) उद्दापन - किसी व्यक्ति को मारने , पीटने, बदनामी करने अथवा अन्य प्रकार का भय दिखाकर उससे धन प्राप्त करना अवैध धनापहरण उदापन कहा जाता है।

(iii) लूट - चोरी में यदि जान से मारने , चोट पहुँचाने या गैरकानूनी बाधा उपस्थित करने का कृत्य किया जाता है तो उसे लूट कहते हैं। अवैध

धनापहरण में जब धन का अपहरणकर्त्ता सामने उपस्थित रहकर मृत्यु या चोट का भय दिखाता है तब वह लूट कही जायगी।

(iv) डकैती - जब लूट में पाँच से अधिक अपराधियों का सक्रिय सहयोग होता हैं तब उसे डकैती कहते हैं।

(v) आपराधिक अपयोजन

(vi) आपराधिक न्यास भंग

(vii) चोरी की सम्पत्ति प्राप्त करना।

(viii) शरारत

(ix) कपट

(x) सम्पत्ति का कपटपूर्ण विन्यास ।

(xi) आपराधिक अतिक्रमण [75]

(3) लेखा से सम्बन्धित अपराध- इस श्रेणी में निम्नलिखित अपराध आते है[76] -

(i) जालसाजी

(ii) गलत व्यापार-चिन्ह का प्रयोग

(iii) गलत सम्पत्ति-चिन्ह का प्रयोग

(iv) जाली नोट छापना

(4) मस्तिष्क को प्रभावित करने वाले अपराध- मानव मस्तिष्क को प्रभावित करने वाले अपराधों को निम्न भागों में विभक्त किया जा सकता है-

(i) मानहानि

(ii) आपराधिक धमकी

(iii) सन्तापन।

(5) लोक-शान्ति के विरूद्ध अपराध - इस श्रेणी में निम्नलिखित अपराध आते हैं-

---

[75] डॉ. एम.एस. चौहान (2008), ''अपराधा शास्त्र एवं अपराधिक प्रशासन '', सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, इलाहबाद, पृ.सं. 18.

[76] राजाराम यादव (2005), भारतीय दण्ड संहिता, 1860, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन, इलाहाबाद।

(i) गैरकानूनी सभा की सदस्यता

(ii) दंगा

(iii) वर्गों में शत्रुता बढ़ाना

(iv) कलह

(v) लोक-बाधा

(v) जुआघर या लाटरी चलाना।

(6) राज्य के विरूद्ध अपराध - राज्य के विरूद्ध अपराधों में निम्नलिखित अपराध आते है[77] -

(i) राज्य के विरूद्ध युद्ध चलाना।

(ii) राजद्रोह

(iii) विद्रोह

(iv) जाली मुद्रा या टिकट बनाना

(v) विधिक आदेश की अवहेलना

(vi) झूठा साक्ष्य देना

(7) शासकीय सेवकों द्वारा अपराध - शासकीय सेवकों द्वारा किये जाने वाले अपराध निम्नलिखित हैं -

(i) अवैधानिक पुरस्कार प्राप्त करना।

(ii) कानून की अवहेलना अथवा किसी को क्षति पहुँचाने के इरादे से गलत प्रमाण-पत्र बनाना।

(iii) अवैधानिक रूप से व्यापार में संलग्न होना अथवा सम्पत्ति की नीलामी में बोली लगाना या खरीदना।[78]

---

77 राजाराम यादव (2005), भारतीय दण्ड संहिता, 1860, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन, इलाहाबाद।

78 डॉ. एम.एस. चौहान (2008), ''अपराध शास्त्र एवं अपराधिक प्रशासन '', सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, इलाहबाद, पृ.सं. 4-5.

निष्कर्ष -

अपराध, दण्ड एवं न्याय व्यवस्था मानव इतिहास के काल से ही चल रही है। आरम्भ से ही अपराध और अन्याय के विरूद्ध मानव तर्क तथा चिन्तन के द्वारा तर्क किया जाता रहा है , भारतीय प्राचीन काल में मनु , याज्ञवक्लय, शुक्र आदि ऋषिमुनियों ने भी अपने धर्मशास्त्रों में दण्ड तथा अपराध का उल्लेख मिलता है। इस काल में स्पष्ट विधि के अभाव में राजा तथा उसके आदेशों को ही विधि तथा न्याय का स्त्रोत समझा जाता है। नारद ने कहा था कि ''चाहे कुछ भी हो, राजा की आज्ञा का पालन करना चाहिए '' इस प्रकार वैदिक काल में अपराधी को उचित दण्ड देना धर्म का भाग माना जाता था जब भी कोई व्यक्ति समाज अथवा विधि के प्रतिकूल आचरण करता है तो उसे व्यक्ति , समाज तथा राज्य के द्वारा प्रताड़ित और बहिष्कृत किया जाता है और इसी को दण्ड कहा जाता है। राज्य के निर्माण का मुख्य उद्देश्य समाज में शान्ति व्यवस्था बनाना है और रास्को पाउण्ड के अनुसार राज्य यह सुनिश्चित करें कि जो व्यक्ति अपनी मेहनत तथा लगन से जो प्राप्त करता है उसका वह उपयोग कर सके और अन्य कोई प्राप्त करता है उसका वह उपयोग कर सके और अन्य कोई व्यक्ति उस वस्तु को छिने नहीं। जीन , जैक्स, रुसो, जॉन, लॉक तथा थॉमस , हॉब्स ने राज्य निर्माण का उद्देश्य समाज की शान्ति व्यवस्था को ही बताया है और राज्य अपने इस उद्देश्य के कर्त्तव्य के निर्वाह अपराधों की रोकथाम करके करता है।

मध्यकाल में समाज में धर्म का प्रभाव अत्यधिक बढ़ गया था और इस कारण से अपराध को पाप के आधार पर परिभाषित किया गया और प्रायश्चितामत्क अवधारणा का भी विकास हुआ परन्तु समयाुनसार अपराधों की अवधारणा तथा दण्ड का स्वरूप बदलता रहा।

मुस्लिम काल में भारत में मुस्लिम विधि के प्राचीन ग्रन्थ कुशन , शरीयत, इत्यादि के अनुसार चलाया जाता था इस विधि के कुछ नियम प्राकृतिक न्याय एवं सामान्य विवेक के अनुरूप नहीं थे।

वर्तमान समय में अपराधों की अवधारणा तथा उनके रोकथाम की दाण्डिक व्यवस्था अंग्रेजी विचारधारा पर आधारित है और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद इसमें उतरोत्तर विकास हो रहा हैं वर्तमान में सुधारात्मक सिद्धान्त के अनुसार यह माना जाता है कि अपराध केवल एक मानसिक मनोवृत्ति है और मानव स्वभाव मूलत अपराधी नहीं होता है किन्हीं परिस्थितियों के अनुसार मानव अपराध कर देता है और उसे सुधररने का पर्याप्त अवसर प्रदान किया जाना चाहिए। इसी के फलस्वरूप वर्तमान दण्डिक व्यवस्थाऐं मृत्युदण्ड में कमी , जेलों की दशाओं में सुधार, पैरोल, परीवीक्षा, भर्त्सना तथा अर्थदण्ड की प्रवृतियों को बढ़ावा मिलता है।

***